अजेय राष्ट्र भावना

उपाध्याय

दो शब्द

यह सग्रह मेरे निबन्धो का है जो चीनी आक्रमण के सदर्भ मे लिखे गए थे और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'धर्मयुग' आदि पत्रो मे प्रकाशित हुए थे। इस आक्रमण ने भारतीय राष्ट्र को सोते से जगा दिया था और उसके साहित्यकारो ने भी राष्ट्र की रक्षा मे प्रयत्न किए थे। उन्ही प्रयत्नो की दिशा मे मेरा भी यह अकिंचन योग था।

इसमे चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया मे लिखे लेखो के अतिरिक्त कश्मीर के सकट सम्बन्धी कुछ निबन्ध भी है। आशा करता हू उनसे मेरे पाठको की कुछ जानकारी बढेगी। कश्मीर का एक अति सक्षिप्त इतिहास भी इसी अर्थ इसमे दे दिया गया है। भारत की अखण्ड राष्ट्रीयता उत्तर मे हिमालय द्वारा ही रक्षित और सीमित है, इसमे एक लेख उस पर भी अनिवार्य हो गया। उस हिमालय को मैंने भारतीय सस्कृति के यशस्वी प्रतीक महाकवि कालिदास की आखो देखने का प्रयत्न किया है। कालिदास ने भारत की एक आदर्श सीमा खीची है, आज के सदर्भ मे उसका ज्ञान भी अनावश्यक न होगा। भारतीय अखण्डता के जो दर्शन सस्कृत के कवियो ने देश की प्राकृतिक सुषमा और एकता मे किए हैं उनकी ओर भी एक निबन्ध मे सकेत कर दिया गया है। भारत की अजेय राष्ट्रभावना का चिंतन इसी शीर्षक के अन्तिम निबध मे हुआ है।

अजेय राष्ट्रभावना

भगवतशरण उपाध्याय

प्रभात प्रकाशन
चावडी बाजार, दिल्ली–६

दो शब्द

यह सग्रह मेरे निबन्धो का है जो चीनी आक्रमण के सदर्भ मे लिखे गए थे और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'धमयुग' आदि पत्रो मे प्रकाशित हुए थे। इस आक्रमण ने भारतीय राष्ट्र को सोते से जगा दिया था और उसके साहित्यकारो ने भी राष्ट्र की रक्षा मे प्रयत्न किए थे। उन्ही प्रयत्नो की दिशा मे मेरा भी यह अकिचन योग था।

इसमे चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया मे लिखे लेखो के अतिरिक्त कश्मीर के सकट सम्बन्धी कुछ निबन्ध भी है। आशा करता हू उनसे मेरे पाठको की कुछ जानकारी बढेगी। कश्मीर का एक अति सक्षिप्त इतिहास भी इसी अर्थ इसमे दे दिया गया है। भारत की अखण्ड राष्ट्रीयता उत्तर मे हिमालय द्वारा ही रक्षित और सीमित है, इसमे एक लेख उस पर भी अनिवाय हो गया। उस हिमालय को मैंने भारतीय सस्कृति के यशस्वी प्रतीक महाकवि कालिदास की आखो देखने का प्रयत्न किया है। कालिदास ने भारत की एक आदश सीमा खीची है, आज के सदर्भ मे उसका ज्ञान भी अनावश्यक न होगा। भारतीय अखण्डता के जो दर्शन सस्कृत के कवियो ने देश की प्राकृतिक सुषमा और एकता मे किए हैं उनकी ओर भी एक निबन्ध मे सकेत कर दिया गया है। भारत की अजेय राष्ट्रभावना का चिंतन इसी शीर्षक के अन्तिम निबध मे हुआ है।

—लेखक

सूची

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः
तस्मिन् तथा वर्तितव्य स धर्मः
मायाचारो मायया वारणीय
साध्वाचरः साधुना प्रत्युपेय ॥

—महाभारत

जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना उचित है, यही धर्म है। धोखे का उत्तर धोखे से देना चाहिए, साधु आचरण का साधु आचरण द्वारा।

१ | उदार भारत, कृतघ्न चीन !

चीनी हमले से मन को चोट कही ज्यादे लगी थी, और नेफा की दिशा से लौट जब घर मे चीनियो की घिनौनी कृतघ्नता की बात सोचने लगा था तभी पाच बरस के मेरे पोते ने गले से झूलकर कहा—बाबा, हिन्दी-चीनी भाई-भाई !

घाव पर ठेस लगी। जाना कि बच्चे की मा ने उसे सिखाकर भेजा होगा, और यह भी जाना कि बालक उस भयानक व्यग्य को गहराई को महसूस कर रहा है जिसका गुमान न केवल मुझे ही नही था बल्कि सारे हिन्दुस्तान को नही था। हा, मुझे भी नही था। शिष्यप्राण ईसा को कब गुमान था कि उसका शिष्य ही एक दिन उसे जालिमो के हाथ सौप देगा, उसकी करतूत से ही ईसा को काटो का ताज पहनना होगा, उसी की मुखबिरी से ईसा को अपना ही सलीब कधो पर ढोना होगा, फिर उसी पर टग जाना होगा ? जुलियस सीजर को कब गुमान था कि उसी का बेटा उसकी कोख मे कटार घुसेड देगा ? हेलियोक्लीज को कब गुमान था कि उसका बेटा उसकी गिरी लाश पर रथ के पहिये दौडायेगा ?

निस्सदेह भारत को भी गुमान न था कि उसे बडा भाई कहने वाला चीन इस तरह उसकी पीठ मे खजर भोक देगा।

मैंने भी कभी चीन से लौटकर उसके अतीत के बडप्पन पर किताबे लिखी थी—'लाल चीन', 'कलकत्ते से पीकिग'! किसने नही लिखा? किसने चीन के उस तीखे जहर को नही पिया जिसकी ऊपरी सतह पर मधु तैरता था, भीतर जिसके हलाहल घुला था? चीन से लौटते ही हमारे उदारचेता अप्रतिम जननायक नेहरू ने कलकत्ते मे ऐलान किया था कि चीन ने शान्ति के विकास मे गजब के कदम उठाये है, अपना देश भी समाजवादी विकास की ओर डग मारेगा। उसी की देखा-देखी उन्होने सरकारी अफसरो का बद कोट के लेबास का भी विधान किया। और उसी चीन ने, जिसके नर-नारियो के सिखाये, प्रदर्शनप्ररित स्वागत ने हमारे पडित का मन मोह लिया था, आज भारत पर हमला किया है!

मध्य एशिया के कुची मे जब भिक्षु कुमारजीव धर्म साध रहा था तब चीनियो ने हमला कर कुमारजीव को कैद कर लिया। कुमारजीव बोला—बिन मागा वरदान मिला, ले चलो उस देश को जहा भगवान के उपदेश के लिये मेरे ग्यारहो प्राण जाग्रत है। और हूणो के देश चीन मे शान्ति और दया के प्रवचन कहे कुमारजीव ने। इन गुरुवाक्यो का प्रतिफल आज फल रहा है। चीन के हूणो ने भारतीय इतिहास के सुनहरे युग को रीढ तोड दी और बदले मे भारत ने चीन के पास शाति के दूत भेजे, अपने स्नेह के स्रोत खोल दिये जिससे देश पिये और पुष्ट हो! मध्य एशिया की अगम्य मरुभूमि को भूख-प्यास से व्याकुल, खच्चरो की नसो के रक्त से प्यास बुझाते भारतीय साधु हूणो के देश तुनहुवाग पहुचते और वाणी

के अमृत से चीनी कानो को मुग्ध कर लेते । कहा उन्होने कि हमारे देश पर जिसने वज्र मारा उसपर हम स्नेह का वर्षा करेंगे । और उस वर्षा का नतीजा आज हम भोग रहे है ! सदियो चीन को भारत ज्ञान के अनन्त सवाद भेजता रहा जिसकी प्रेरणा से, जिसके विस्तार के लिये चीनियो ने प्रेस और कागज ईजाद किये और ससार मे ख्याति पाई । अजन्ता के चित्र सदियो चीनी तुन्हुवाग की गुफाओ की दीवारो पर बरसते रहे, और आज हूणो और मगोलो से बर्बरता मे बाजी मार ले जाने वाले चीनियो ने अपने गुरुदेश भारत पर हमला किया है !

उदारता ने हमारे इतिहास को बार-बार बदला है और बार-बार हमने शान्ति की शपथ ली है । अपनी उदारता का ही परिणाम आज हम भुगत रहे है । मैक्मोहन सीमारेखा को हमने नही बनाया था, उसे हमारे स्वामी अग्रेजो और स्वय चीनियो ने बनाया था । हमे तो केवल उसका उत्तराधिकार मिला है, जैसे स्वय चीनियो को चीन की उन सीमाओ का उत्तराधिकार मिला जिनके भीतर से तडप-तडप आज वे पडो-सियो को गुलाम बनाने के प्रयत्न कर रहे है । मैक्मोहन सीमा-रेखा सबधी सधि पर उन्होने, उनके पूर्वगामियो ने, अग्रेजो के साथ हस्ताक्षर किये, आज के चीनी प्रतिनिधियो ने स्वतत्र भारत के प्रधान मत्री के साथ हस्ताक्षर किये है, मैक्मोहन सीमारेखा हमारी अन्यतम सीमारेखा है । हम उसे छोड नही सकते । जितनी भी कुरबानिया सभव होगी, और सभव वे वहा तक होगी जहा तक जिस्म मे खून की रवानी होगी, हम

सब करेंगे और वह सीमारेखा जो स्वतत्र भारत के हिमालय-वर्ती प्रदेश की सीमारेखा है, हम किसी हालत मे न छोडेगे।

हम आज के चीन की शक्ति को जानते है, उसकी बर्बर नीति को जानते है, उसकी कभी न बुझने वाली हविस की आग को जानते है, पर हम अपनी सभावनाओ को भी जानते है, और जानते है कि नये राष्ट्र के बलिदानो की सीमाये नि सीम होती है, कि हम अपनी उस मूलभूत देश-प्रेम की प्रेरणा-धारा मे उनकी बर्बरता को, उनकी दैत्य-भूख को बहा-कर, डुबाकर रहेगे। नयी आजादी का स्वाद जिस राष्ट्र को मिल चुका है वह अपराजेय है, भारत अपराजेय है।

पडौसी के धर्म मे हम अबतक चुप थे। विश्वास था कि पडौसी और ऐसा पडौसी जिसे हमने शताब्दियो नही सहस्राब्दियो निबाहा है, हमारी सीमा के प्रति देवभूमि की भाँति श्रद्धाशील रहेगा, पर हमारे विश्वास के बीज गलत जमीन मे लगे और आज हमारी आँखे सहसा खुल गई है।

हमने अपने ही प्राचीन आचार्यो के अनुभूत सत्यो का परित्याग कर दिया था जिसका परिणाम आज हमारे सामने है। चाणक्य ने मौर्य राजनीति को आज से कोई सवा दो हजार साल पहले सवारते हुए कहा था कि पहला शत्रु पडौसी हुआ करता है, वह 'प्रकृत्यमित्र' है, क्योकि उसकी बढती हुई महत्वाकाक्षा का पहला प्रहार निकटतम पडौसी पर होता है, समान सीमा के बन्धु राज्य पर, और कि पहली सावधानी उसके प्रति बरतनी चाहिये। उस नीति का परिणाम यह हुआ था कि तब हमारे पहरुओ ने हिन्दूकुश की चोटियो से चीन, मध्य एशिया

ओर सीरिया से उठने वाले तूफानो की बाग मोड दी थी। और उन्होने हिन्दूकुश लाघ, आमूदरिया लाघ, वक्षु की केसर की क्यारियो मे अपने घोडे हिराये थे। आज उसी नीति को भूलकर हम अपनी सीमा को भी सभाल करने मे जैसे असमर्थ हो गये है।

पर हम जानते है कि हमारी यह असमर्थता मात्र क्षणिक रही है और आज हमारी अस्सी करोड आँखे मैक्मोहन सीमा-रेखा पर लगी है, लद्दाख की सीक्यॉगवर्नी सीमा पर और अस्सी करोड हाथ उसकी रक्षा के लिये आकुल हो उठे है।

हम जानते है कि चीनियो की सख्या दैत्यो की सख्या के परिमाण मे है, साथ ही उनके पास दैत्यो का 'रक्तबीज' का जादू भी है। रक्तबीज दत्यो का मोहनास्त्र था। सुरासुर युद्ध मे जब देवता एक दैत्य को मारते थे तब उसके शरीर से टपके हुए रक्त का एक-एक बूंद नया दैत्य बन जाया करता था, रक्तबीज बन जाता था, नये सिरे से युद्ध करता था। पर क्या उनका सहार होने से बच रहा? निश्चय हमारी यह शपथ है, हमारा यह प्रण है कि जब तक एक चीनी भी मैक्मोहन सीमा-रेखा के इस पार रह जायेगा, नेफा की जमीन पर एक भी पीला मगोल चीनी रह जायेगा, हम चैन न लेगे। हम यह भी जानते है कि चीन के निर्मम विधाताओ को अपनी जनता के प्राणो का मोह नही, उसकी जान की कोई कीमत नही। तभी तो वे अपने गाव की उस जनता का क्रूरतापूर्वक सगीनो की नोक पर भारतीय मोर्चो की ओर हाक रहे है। और इस जनता को घर का मोह भला हो कैसे, जिसके प्रति श्रद्धान्वित हो वे

दूसरो के घरो के प्रति श्रद्धान्वित हो ? जो चावल-चबेना घर पर है वही मोर्चो पर है । जो घरो से उखाडे जा चुके है उनके लिये क्या तकला मकान का बियाबाँ, क्या हिमालय की ऊँचाइयाँ, क्या तिब्बत-भारत के मोर्चे। काश कि वे भयप्रेरित चीनी किसान जान पाते कि यह लडाई कृतघ्नता का आखिरी सबूत है, कि वह सीमा पार की जमीन है, दूसरो की देवभूमि, जिस पर वे अपना खून बहा रहे है, उनके लिये जिनके सामने जिन्दगी का कोई मोल नही । वर्ना क्या यह मुमकिन था कि जिन खतरनाक ऊचाइयो पर पहाडी खच्चर तक चूक जाने के डर से चलने की हिम्मत न करे, वहाँ अपनी हथेलियो पर गरीब चीनी किसान तोप गाडियो के पहिये सभाले ।

काश ! वे जान पाते कि यह लडाई सीमा की लडाई नही, इन्सानियत के खिलाफ लडाई है, उस उदार पडौसी की पीठ मे छरा भोकना है जो राष्ट्रो की पाँत से निकाले चीन को फिर उनकी जमात मे बिठाने का प्रयत्न आज भी कर रहा है, जब उसकी नेफा की पेशानी पर चीन हथौडे बरसा रहा है ! अभी कुछ हफ्ते नही गुजरे जब सयुक्त राष्ट्र सघ की बैठक मे जोरिन के प्रस्ताव का भारत ने चीन के मसले पर समर्थन किया था और चीन के राष्ट्र सघ मे प्रवेश मे सहायता की थी, ठीक तभी जब चीन ने मैक्मोहन रेखा की परवाह न कर उसे लाँघ जाने का हुक्म अपनी सेना को जारी किया था और जब वह चौथाई नेफा जीत चुका था, जब उसके तोवाग ले लेने पर हमारे जवान जुङ्ग के मोर्चे पर जूझ रहे थे ।

भारत की ठीक उस दशा मे चीन की यह सहायता, जब

चीन भारत पर गोले बरसा रहा था, निश्चय राष्ट्रो की समझ मे नही आया, क्योकि आधुनिक इतिहास तो दूर, मानव जाति के इतिहास मे ऐसा कोई उदाहरण नही कि जब हमलावर गोले बरसा रहा हो, उसका शिकार मदद मे उसकी पीठ ठोके। वस्तुत यह उदाहरण हूणो की चढाई के जवाब मे चीन पर स्नेह की वर्षा करने वाले उदाहरण से कही लामिसाल है। और यह कुछ अकारण नही कि भारत के इस आचरण पर, जो निस्सदेह नैतिक आचरण था, भारतीय वैदेशिक नीति के सदर्भ मे नितान्त अनुकूल—वे राष्ट्र आश्चर्यपूर्वक दातो तले उगली दबा ले जो हमसे सभवत कही सही चीनी प्रकृति का राज पा चुके है, और जो इस बात पर सन्नद्ध है कि वे किसी हालत मे इस इन्सानियत के दुश्मन चीन को राष्ट्र सघ मे बैठने का अधिकार न देगे।

भारत को भी शायद अपनी इस नीति पर विचार करना होगा कि क्या 'जो तोकू कॉटा बुवै ताहि बोइ तू फूल' का सिद्धान्त आज भी कोई महत्व रखता है। सभा मे बैठने की एक शिष्टता होती है, उसी शिष्टता से उसमे बैठने वाला सभ्य कहलाता है—राष्ट्र सघ की सभा मे बैठने की सभ्यता हमला-परस्त, शक्तिपरस्त बर्बर चीन मे है क्या ? मै नही समझता कि भारत, चीन को राष्ट्र सघ मे बैठाने की सहायता न कर किसी अश मे अपने सनातन शान्तिप्रिय वैदेशिक नीति का प्रति-कूल आचरण करनेवाला कहलायेगा। भारत आज आक्रमण का उत्तर प्रत्याक्रमण से दे रहा है, निश्चय सभ्य मानवराष्ट्रो की पक्ति मे बैठने का, मानव स्वतन्त्रता के विरोधी चीन के

दावे का, भी वह समर्थन न करेगा।

भारत ने उदारता की सीमाय लॉघ ली है जिसका नतीजा यह हुआ है कि चीनियो ने उसे कायर समझ लिया है। वस्तुत कायरता और मानवीयता की सीमाये परस्पर लगी रहती है और एक के आचरण से दूसरे का धोखा हो जाना कुछ अजब नही। पर उस धोखे के कारण भी हमी होगे जब तक कि हम चीनियो के प्रति यह स्पष्ट न कर दे कि हमारी इन्सानपरस्ती बुजदिली नही थी, इन्सानपरस्ती थी, पर अगर हमारे शील, और एक नही पॉच-पॉच शील का—जिसकी बार-बार चीन के विधाताओ ने शपथ ली थी—अर्थ वे दैन्य लगावे तो हम भी उस शठता का उत्तर उस नीति से देगे जिस नीति का उपयोग सभ्य और सज्जन को जबतब मजबूर होकर करना पडता है। और हमने उसका सबूत दिया है, दे रहे है, देते जायेगे। हमारे चालीस करोड नर-नारी, आबालवृद्ध अपने देश की, उसकी सीमाओ की, अपनी बडी कुरबानियो से कमाई आजादी की रक्षा रक्त की अंतिम बूद तक करेगे। यह हमारी भीष्म प्रतिज्ञा है, यही हमारी मात्र शपथ है।

जय हिन्द! जय भारत!

२ | हिमालय की देवभूमि पर दानवों का ताण्डव

घमासान अभी थमा है। हिमालय के मोर्चो पर जवान जूझ चुके है। हिमालय की सफेद बर्फीली चोटिया हमलावरो और बलिदानियो के खून से रग गई है। घमासान अभी थमा है।

पर घमासान बन्द नही होने का जब तक देवभूमि हिमालय की भारतीय सीमा पर एक भी हमलावर चीनी कायम है। हम जानते है कि चीन की जनसख्या बडी है, पर यह भी जानते है कि वह मात्र जनसख्या है, जनशक्ति नही, क्योकि उसके पीछे चीन की जनता नही, मात्र जगबाज सरदार हैं—पुराने चीन 'वार लार्डो' के आधुनिक प्रतिनिधि—जिनकी दूसरो की जमीन हडप लेने की हविस नही मिटी और जो सगीनो की नोक से अपने गावो की जनता को भारत के मोर्चो पर ठेले जा रहे है। न उनके पास फौजी हुनर है और न सैनिक ईमानदारी, पर उनकी सैनिको की धाराओ पर धाराए बढी आ रही है, उनकी तोपे आग की बाढो पर बाढे दागती जा रही हैं। मगोलो की तरह, उन हूणो की तरह, जो बार-बार कभी भारत की सीमाओ से टकराते रहे थे और अत मे उसके

उदर मे पैठ-पच गये थे। उनके चगेज ने चीन से आस्ट्रिया तक, अरब से मास्को तक की जमीन जीत ली थी—मास्को और लेनिनग्राद मे तातारो ने मस्जिदे खडी कर दी थी—(मास्को और लेनिनग्राद सावधान हो जाए, क्योकि जिस अजदहा ने अपनी पूंछ की चोट भारत पर मारी है उसके जबडे रूस की ओर है) पर चगेज़ ने तब के हिन्दुस्तान की हकीकत समझी थी और सिधुनद के तीर से वह वापस लौट गया था।

पर आज के चीनी 'वार-लार्ड' आज के भारत की हकीकत नही जानते और अपने आग के मोर्चे भारत की सरहद पर दूर पार बढाये आ रहे है, शायद इस कारण कि वे जानते है कि वे तिब्बत के पार हिमालय की उन बर्फीली ऊचाइयो पर आग लगा रहे है जहा वे महज आग ताप सकेंगे और उसके अपने घर मे लग जाने का डर न होगा। पर आग यह लौटेगी, भारत के उन्चासो पवन का तूफान लिये लौटेगी, और सारा चीन दावाग्नि का शिकार हो उठेगा। निनवे के असुर सम्राटो ने जब इजरायल पर अग्नि के भाड उलट जुरूसलम को अग्निसात कर दिया था तब यहूदी नबी नाहौम की आवाज़ निनवे के खिलाफ गूज उठी थी, असुरो के जोम और अहकार को धिक्कारता—"धिक्कार उस नगर को! धिक्कार उस खूनी नगर निनवे को। देख निनवे, मै तेरा विरोधी हू, अनन्य शत्रु, और मै तेरे नगपन का राज खोल दूगा, तेरी बर्बरता को ढकने वाले लिबास को उलट दूगा और तेरी नग्नता का राष्ट्रो मे भडाफोड कर दूंगा, राज्यो पर तेरी बेहआई ज़ाहिर कर दूगा। और तेरे ऊपर तेरा ही गलीज़ बरस पडेगा,

तेरे अहकार को ढक लेगा, तुझे घिनौना बना देगा और तू अपनी ही ज़लालत पर ताकता रह जायगा। और ऐसा होकर रहेगा, जान ले तू, अभिशप्त निनवे, कि आज जो तेरे हमगुज़र है, तुझसे बाजू मिलाये चल रहे है, वे ही एक दिन तेरी छूत मानेंगे, तेरा मुह देखने से परहेज करेगे, तेरे साये से दूर भागेगे, और चिल्ला-चिल्लाकर ऐलान करेगे कि निनवे नष्ट हो गया, धूल मे पडा है, जमीदोज हो चुका है। फिर कौन तुझ पर आसू बहायेगा ? देख निनवे, कान खोलकर सुन ले—तेरे बाशिन्दो मे बस औरते रह जायेगी, मर्द तलवारो के घाट उतर जायेगे, तेरे घेरे के द्वार दोनो फाटक दो ओर दुश्मनो के सामने अपने-आप खुल जायेंगे, आग की लपटे तेरे शहरपनाह को, तुझे घेरने वाली ऊची दीवारो को चाट जायेंगी ' असुरो के राजा, तू भी सुन ले—तेरे गावो के सिंगार भेडो के चरवाहे सदा के लिए सो जायगे, तेरे अभिजात अमीर धूल मे मिल जायगे, तेरी कौम टुकडे-टुकडे होकर, बर्बाद होकर, पहाडो पर बिखर जायगी और कोई उसका पुरसाहाल न होगा, कोई नामलेवा न बचेगा, फिर उनको हॉककर कोई इकट्ठा न कर पायेगा और तब निनवे, तेरे घाव का कोई मरहम भी न होगा, और तेरा घाव गहरा है, और ऐसा गहरा कि तेरे दर्द से किसी की आह न निकलेगी, सुनने वाले ताली बजा उठेगे, कारण कि ज़मीन पर भला ऐसा कौन है जिस पर तेरा कहर न बरसा हो ?"

यही बात आज मैं पिकिग से कह रहा हू, जो निनवे का, खूरेजी मे, असाधारण वारिस है। और मै नाहौम नही हू,

नबी नही हूँ, फकीर नही हू, फकत भारतीय राष्ट्रीयता का हामी मार्क्सवादी नागरिक हू । पहले कभी चीनी साम्यवाद ने मुझे गहरा प्रभावित किया था, जैसे उसने हमारे प्रधानमत्री पडित नेहरू को प्रभावित किया था जिन्होने चीन से लौटकर उसी प्रभाव के सकेत पर अपने देश मे उसी समाजवादी राष्ट्र की कल्पना की, जैसे चीन से लौटकर मैने खुद किताबे लिखी—"लाल चीन", "कलकत्ते से पिकिग"—पर आज मार्क्सवाद के दुश्मन, नैतिक मार्क्सवाद आस्था के दुश्मन, माओ और चाऊ-एन-लाई ने वह धोखे का सपना तोड दिया है । निश्चय चीन का मार्क्सवाद न मार्क्स का है, न लेनिन का और न उसकी राष्ट्रीयता सुनियात सेन की है । उसका मार्क्सवाद उस अजगर का है जो चीनी भूख का प्रतीक है और जो भारत की उत्तरी सीमा पर आज आग की लपटे उगल रहा है ।

ऐसा नही कि भारत ने उस अजगर को जाना न हो । भारत ने उसे जाना है, उसकी दुनीति का अपनी प्रशात नीति से दमन किया है, उसे शाति का सहस्राब्दियो पाठ पढाया है, उसे वसिष्ठ की तरह चूहे से बिल्ली, बिल्ली से कुत्ता, कुत्ते से शेर बनाया है, पर वही वसिष्ठ का बनाया शेर अगर अपने विधाता वसिष्ठ को ही खा जाने के उपक्रम करे तो वसिष्ठ को उसे फिर चूहा बना देने मे जरा भी सकोच न होगा ।

सकोच वसिष्ठ को हुआ भी नही है क्योकि आबू का यज्ञकुण्ड अब हिमालय की चोटियो पर जा चढा है और निर-तर अग्निवेदी से हमारी वीरता के प्रतीक और पहरुये—चौहान प्रतिहार, परमार और चालुक्य—निकालता जा रहा है—यह

कुछ अकारण नही कि पश्चिम से आहूत "चौहान" के हाथ मे आज भारतीय रिसालो की बागडोर दे दी गई है और ये रिसाले अब हिमालय की चोटियाँ लाघकर रहेगे।

चीनी—(जब मैं यह लेख लिखा रहा हू मेरा पाच बरस का नाती मेरे पास बैठा चुपचाप सुन रहा है और अभी-अभी जैसे ही मैने 'चीन' शब्द का उच्चारण किया और आगे की बात बोलने के लिए जरा दम लिया तब तक बच्चे ने हल्के से कह दिया है—"बौने"—सच, चीनी बौने। और निश्चय इस पाच बरस के बालक का यह उद्गार भारतीय जनता का उद्गार है।)—चीनी निस्सदेह जानकार है, अनेक प्रकार की दानवी मायाओ के जानकार। वे जानते है कि पहली चोट पडोसी पर करनी होती है। प्रशा के पहले शस्त्रवादी नृपति और कूटनीतिवादी मेकियावेली के परम शिष्य फ्रेडरिक महान् ने जब वोल्तेयर से कहा था कि मैं मेकयावेली का खडन लिखने का विचार कर रहा हू तब व्यग्यकार वोल्तेयर ने धीरे से मुस्कराकर कह दिया था—बेशक, मेकियावेली जैसा गुरु अपने शिष्य से खडन की स्वाभाविक ही अपेक्षा करेगा और उस व्यग्य की चोट को समझ फ्रेडरिक ने मेकियावेली का खडन तो नही लिखा था, आस्ट्रिया की मारिया थेरेसा का अभिभावकत्व कर उससे साइलेशिया जरूर छीन लिया था। चीन ने गुरु-वाक्य का खडन भी किया है, उसकी बताई राजनीति के दाव भी उसी पर उलट दिये हैं। कौटिल्य ने लिखा था—पडोसी 'प्रकृत्यमित्र' होता है, उससे सावधान रहो, दिग्विजय मे पहली चोट उसी पर करनी होगी। भारत ने तीसरी ही पीढी मे

इस नीति को उलट दिया था और आज के अन्तर्राष्ट्रीय शाति नीति के गुरु अशोक ने कौटिल्य को पीछे कर अपने गगनचुम्बी स्तभो पर, अमर चट्टानो पर, ऐलान किया था—अब तक का भेरीघोष अब धर्मघोष होगा, दिग्विजय अब धर्मविजय होगी। माओ फ्रेडरिक की सीमाओ से भी सीमित नही क्योकि उसने खडन भी किया, गुरुदेश पर आक्रमण भी। इधर महीने-भर से पिकिग का रेडियो निरतर झूठा प्रचार करता रहा है, अपने आक्रमण को आत्मरक्षा घोषित करता रहा है, निरीह बैठे भारत को हमलावर और आक्रात कहता रहा है। सो वह जानकार है, झूठ की माया का जानकर।

और नैतिकता की कोई सीमा उसे बाध नही सकती, क्योकि आज का चीन नैतिकता के प्रतिबध को प्रतिबध नही मानता। शातिप्रिय पडोसी की युद्ध-विरक्ति उसके आडे नही आ सकती, उसी की दी हुई पचशील की नीति की बाडुग मे शपथ लेने वाला चीन पचशील का मत्र देने वाले भारत पर ही आक्रमण करेगा, क्योकि आज उसने उस नीति की व्यवस्था को (कि पूंजीवादी और साम्यवादी देशो का इस धरा पर समान रूप से सहअस्तित्व हो सकता है और जिसकी उसी का पडोसी और रहनुमा भाई रूस घोषणा करता है) रद्दी के टोकरे मे डाल दिया है। वह आज खुला ऐलान करने लगा है कि सहअस्तित्व का कोई अर्थ नही, सहअस्तित्व सभव नही।

सो यह साहस की बात है कि ऐसे गुरु भारत पर वह पीछे से आघात करे, जब भारत अपनी पीठ को मित्र राष्ट्र

चीन द्वारा सरक्षित मान निर्भय सो रहा हो। सच यह साहस की बात है कि पडोसी मित्र राष्ट्र कृतघ्नता की सारी सीमाए लाघ जाए, कृतघ्नता के सारे मिसाल झूठ कर दे। सोचिये ज़रा इसके विपरीत भारत के भी उस कठिन साहस की बात जब चीन के आक्रमण के बावजूद, रूसी प्रतिनिधि ज़ोरिन की चुटीली बातो के बावजूद, राष्ट्र सघ मे चीन को बिठाने के प्रस्ताव का समर्थन कर उसने उसके अनुकूल वोट दिया है। पर अब भारत ने भी उस बदी को लाचार महसूस किया है जिसका उसे गुमान भी न था और उसने कौटिल्य की चेतावनी याद कर, अपने स्वत्व पर 'आफलोदय' अधिकार तक, अशोक की नीति को बदलकर फिर अपना राजनीतिक नारा बनाया है—धर्मघोष फिर भेरीघोष होगा, धर्मविजय विजित सीमा-विजय होगी, और भारत अपनी देवभूमि हिमालय की धरा लेकर रहेगा।

पडोसी के प्रति इस दुर्भावना की सच्चाई चीन अपने रेडियो प्रचार द्वारा दबा रहा है। पर एशिया—विशेषत दक्षिण-पूर्वी एशिया—विचल हो उठा है। कभी के चीन के एक वर्ग का नारा था कि चीनी वर्ग की बोलिया बोलने वाले सारे राष्ट्र चीन के उपगोश्री है, उसके साम्राज्य के सीमावर्ती सामत है, उसकी 'मडलनाभि' के मडलाधीश है। इस चीनी चक्रपरिधि मे पूर्वी सीमा की प्रायः सारी जातिया हैं—सिक्किम, भूटान, बर्मा, तिब्बत, थाईलैंड, मलाया, कबोडिया, वियतनाम, लाओस, सभी। तिब्बत को चीन आत्मसात कर चुका है, बर्मा से उसने क्षणिक सधि कर ली है, सिक्किम और तिब्बत के

प्रति विश्वास की घोषणा की है, वियत्नाम और लाओस उसके अपने हैं, थाईलैंड और मलाया की इन सारे देशो को हडप लेने के बाद विसात ही क्या है ? सिक्कम और भूटान का भाग्य भारत के नेफा और आसाम से बधा है और बर्मा के साथ चीन की सधि कब तक टिकी रहेगी, यह कहना न होगा, विशेषकर जब वहा पन्द्रह फीसदी चीनी रहते है और जब बर्मा का प्राय समूचा व्यापार कुछ भारतीयो के हाथ मे, अधिकतर चीनियो के हाथ मे है । नेपाल के नये राज्य के प्रति चीन ने जो रुख लिया है उसने साम्यवादी राष्ट्रो को भी हैरत मे डाल दिया है, यद्यपि साधारण गणतात्रिक राष्ट्र भी इसको साफ देख रहे है कि अन्न और अन्नाद का उपक्रम चल रहा है, कि चूहा बिल्ली की मूछो से खेल रहा है, रीझ-रीझ उसको प्यार मे नोच रहा है, और बिल्ली अपना लाड उस पर निछावर किए जा रही है । और यह नेपाल का चूहा भारत के बहिरग मे बिल बनाकर रह रहा है, और सातो धान उसके बिल मे हैं ।

हिन्देशिया नेपाल से कही ज्यादा गुमराह है । शिकार का राजनीति के जाल मे अपने-आप आ फसने का वह अपना उदाहरण आप है । वही एक राष्ट्र है जहा दोहरी नागरिकता व्यवस्थित है । बडी सख्या मे हिन्देशिया मे रहने वाले चीनी हिन्देशिया के भी नागरिक हैं, चीन के भी, और एक दिन वे हन्देशिया को समूचा लील जायेगे । जाहिर है कि जैसे कभी हिटलर ने जर्मनी के निकट के देशो मे जहा-जहा जर्मन रहते थे वहा-वहा सूडेटन-जर्मन राष्ट्र की कल्पना की थी, वैसे ही

आज माओ ने भी समूचे दक्षिण-पूर्वी एशिया मे बसने वाले चीनियो के नाम पर सूडेटन-चीन का सपना देखा है। पर निश्चय उसका यह सपना वैसे ही टूटकर रहेगा जैसे हिटलर का टूट गया था।

आज भारत जग उठा है, भारत खूब सोया, हमला हो चुकने पर भी कुछ काल सोता रहा, चाहे उनीदी नीद ही सोता रहा हो, पर आज वह जाग उठा है। और चाहे 'अहिपुच्छ' वृत्र कितना भी भयकर हो, चीन का अजदहा कितना भी विशाल हो, वह उसे पछाडकर ही रहेगा, वज्र द्वारा उस दानु-पुत्र वृत्र को नष्ट कर देगा, अजदहे के जहरीले दाढ उखाड देगा। और यह चीनी 'मत्तगयन्द' सावधान हो जाय क्योकि उसने सिह को छेडा है और सिह जग पडा है। हूणो से एक बार जब भारत टकराया था तब धरा हिल उठी थी—और उसकी भुजाओ ने आवर्त बना दिया था—हूणैर्येन समागतस्य समरे दोर्म्या धरा कम्पिता। भीमावर्तकरस्य—चीनियो का पहला हमला भारत ने वैसे ही लिया जैसे स्कन्दगुप्त ने कभी हूणो का लिया था, पर शीघ्र ही उसका उत्तर यशोधर्मा ने हूणो को देश से निकालकर अपनी विजय की प्रशस्ति मदसोर मे स्थापित स्तम्भ पर खुदवाकर दिया था। अब हमारा विजय-स्तम्भ हिमालय की चोटियो पर स्थापित होगा।

जय हिन्द! जय भारत!!

३ | दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्र और चीन का खतरा

भारत पर चीन का हमला खास मतलब रखता है। पहले तो यह समझ लेना चाहिए कि यह सरहदी झगडो का निपटारा नही, चीनी प्रमरनीति से सयोजित हमला है जिसने दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रो की हाल की जीती आजादी को खतरे मे डाल दिया है। पिछली दो सदियो से दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रो के ऊपर यूरोपीय साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक सत्ता का प्रभुत्व रहा है जिसके जुए को खूनी कुरबानियो से इन नवोदित राष्ट्रो ने अपने थके कधो से उतार फेका है। चीन और जापान उस विदेशी प्रभुता से प्राय मुक्त रहे है। जापान तो सर्वथा मुक्त रहा है पर चीन पर यूरोपीय और अमरीकी कशमकश का दौरा खासा रहा है, यद्यपि भारत अथवा दूसरे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशो की तरह वह कभी विदेशी शासन मे नही आ सका था।

जापान की स्थिति बिलकुल दूसरी रही है। उसने अनेक रूप से अपने को इग्लैड की सत्ता का अनुगामी समझा। जैसे यूरोप के पश्चिम मे इग्लैड की स्थिति एकाकी रही है वैसे ही जापान की भी एशिया के पूरब मे एकाकी रही है और उसने

भी अनेक प्रकार से साहस और सूझ से अपनी शक्ति बढानी चाही है। अपना सारा शासनविधान उसने इग्लैंड के अनुरूप साधा और उसी की देखा-देखी पूरब मे साम्राज्य निर्माण की व्यवस्था की। एक सामान्य राजनीतिक सिद्धात यह रहा है कि साधारणत तग परिधि मे रहने वाली वीर्यवान् जाति ही अपनी बढती हुई आबादी की उदरपूर्ति और नई बस्ती के लिए लाचार प्रसरनोति का अवलबन करती है और बाद मे जब खून का स्वाद पाए शेर की तरह उसे उपनिवेशो के निर्माण का चस्का लग जाता है तब वह, इतना आवश्यकता के लिए नही जितना साम्राज्य के ऐश्वर्य के लिए, साम्राज्यवादी प्रसरनीति को अपनाती है। यही स्थिति वस्तुत सत्रहवी-अठारहवी सदियो के प्रसरमान यूरोपीय राष्ट्रो—स्पेन, इग्लैंड, जर्मनी, फ्रास, पुर्तगाल—की रही है। जर्मनी के उपक्रम इस दिशा मे सबसे पीछे हुए। इस सिद्धात के अनुसार स्वाभाविक ही यह विपरीत सत्य भी निष्कर्ष रूप में प्राय अकाट्य माना जाता था कि जिस राष्ट्र की भौगोलिक सीमाए बडी होगी और उन सीमाओ पर अधिकार स्वय उस राष्ट्र का होगा उसे प्रसरलिप्सा न होगी, उसकी आबादी की आवश्यकताए उसकी सीमाओ मे ही उत्पन्न वस्तुओ से पूरी हो जायगी और अपनी औद्योगिक व्यापार की वस्तुओ की खपत तक के लिए उसको साम्राज्य के झडे के नीचे बाहरी बाजार ढूढने न पडेगे। पर उस राजनीतिक—आर्थिक आधार-भूत सिद्धात को इस चीनी हमले ने गलत साबित कर दिया है। चीन की आबादी का कुछ अश चाहे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशो मे फैला आ

हो, उसकी अधिकतर आबादी चीन की सीमाओ मे ही आज भी बसी है, और उन सीमाओ की परिधि इतनी बडी है कि उसकी आज की दुगुनी आबादी भी उन सीमाओ मे समा सकती है। इससे यह वैसे भी समझा जा सकता है कि उसका यह प्रसरात्मक आक्रमण आवश्यकतावश नही साम्राज्यवादी लिप्सा के कारण हुआ है। इसका एक खास राज भी है, जो इस प्रकार है।

जापान ने आवश्यकतावश, फिर साम्राज्य के ऐश्वर्य के लिए, उन्नीसवी सदी के अंत मे अपना शक्ति-सगठन शुरू किया। अपनी सदियो पुरानी सामन्ती स्थिति को सर्वथा तोड उसने एक आर्थिक-सामाजिक राजसत्ताक नई स्थिति कायम की और वर्तमान सदी के आरभ मे उसका रूप बहुत कुछ इग्लैड और प्रशा जैसा हो गया। उसने निश्चय किया कि पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया पर उसका एक मात्र प्रभुत्व होगा और उस दिशा मे उसने तत्काल डग भरे। उसके प्रति-द्वद्वी उसके दो पडोसी हो सकते थे, चीन और रूस, जिनमे चीन तो तब अफीम की नीद सोता था और रूस, जार-शाही का शिकार, अपने साम्राज्य की ढीली चूले सभाल सकने मे असमर्थ था। सो एक ओर तो जापान ने पूर्वी सागर पर अधिकार कर चीन मे यूरोपीय सत्ताओ की शक्ति क्षीण कर दी, दूसरी ओर सन् १९०५ मे रूस को धूल चटा उससे मचुकुओ छीन ससार को अपनी उठती हुई अदम्य शक्ति से चकित कर दिया। दूसरे महायुद्ध की भूमिका-स्वरूप जब इटली ने अबीसीनिया पर हमला किया तब जापान ने भी चीन को

सीधा डकार लिया, यद्यपि यह सचमुच सभव न था कि सदा के लिए साप का बच्चा अजगर को निगल जाए। जीनीवा के लीग आफ नेशस ने इटली और जापान दोनो को चेतावनी भेजी और दोनो ने उसका उपहास कर लीग आफ नेशन्स की बुनियाद मिटा दी। जापान ठीक उसी तरह पूरब के राष्ट्रो के विरुद्ध बढा जिस तरह हिटलर का जर्मनी यूरोपीय राष्ट्रो के विरुद्ध बढा था। चीन के बाद फिलिपीन, हिन्देशिया, मलय, कबोडिया, लाओस और वियतनाम, थाईलैड, बर्मा सभी एक के बाद एक उसकी प्रसरनीति मे समाते गए और अब बारी भारत की थी जिसके कलकत्ते पर उसने हल्की गोलाबारी की और मद्रास के बन्दरगाह पर धावा किया। दक्षिण-पूर्वी एशिया के सारे राष्ट्र अब जापान के थे और जापान का साम्राज्य उनके ऊपर छाया हुआ था कि ठीक तभी पश्चिम मे युद्ध का पासा पलटा और स्तालिनग्राद का मोर्चा रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया होता बर्लिन तक जा पहुचा और जर्मनी उजड गया। उसका असर जर्मनी के मित्र जापान पर होना अनिवार्य था और उसकी लौटती सेनाओ के बावजूद अमेरिका ने हिरोशिमा और नागासाकी को अणुबम के पहले प्रहार से नष्ट कर जापान को न केवल बेबस कर दिया बल्कि अपनी सेनाए तक जापान की जमीन पर एक समूचे युगपर्यन्त जमा रखी।

जैसे पश्चिम के राष्ट्रो ने टूटे जर्मनी के चगुल से उठ नई सास ली वैसे ही पूर्व के देशो ने भी जापानी शिकजे से मुक्त हो नवजीवन पाया। नए चीन ने चीनी हार, बुज़दिली और

कायरता के जनक कोमिन्ताग को, अमरीकी विरोध के बावजूद, देश से उखाड फेंका और वहा समाजवाद की सत्ता स्थापित की। दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रो ने, स्वय भारत ने सतोष की सास ली और चीन मे हुए नए सवेरे को अपना भी सूर्योदय माना।

पर हकीकत असल मे कुछ और थी जिसका तब इन राष्ट्रो को अहसास तक न हुआ था। चीन जापान के साम्राज्यवाद का उत्तराधिकारी बन गया। दक्षिण-पूर्वी एशिया के छोटे-मोटे देशो को तो उसने स्नेह, दया, सहायता आदि की झूठी माया से अपने अभिमुख किया, पर वह जानता था कि भारत से, विशेषकर एशिया ही नही समूचे ससार मे तीव्र गति से उठते हुए उसके मान के सदर्भ मे, उसे कभी न कभी टकराना होगा, क्योकि बिना उससे टकराए एशिया की राजनीति की बागडोर उसके हाथ नही लगेगी। और वह अवसर की ताक मे बैठा रहा। अवसर मिलते ही, जब दक्षिण-पूर्वी एशिया और अफ्रीका के नए आज़ाद हुए देश अपने-अपने राष्ट्र के विकास मे फसे, तब चीन, जो स्वय पिछले प्राय· पद्रह सालो से सभी प्रकार से अपनी शक्ति बढाता रहा था, सहसा अपने सभावित प्रतिद्वद्वी भारत पर आ टूटा। भारत विश्वास की नीद सो रहा था, कृतघ्नता की चोट से सहसा लडखडा गया।

एशिया और अफ्रीका के देशो के लिए यह हमला एक चेतावनी था, विशेषकर दक्षिण-पूर्वी एशिया के लिए महान् खतरा। पर इसी घड़ी भारत की राजनीति को एक नए तथ्य
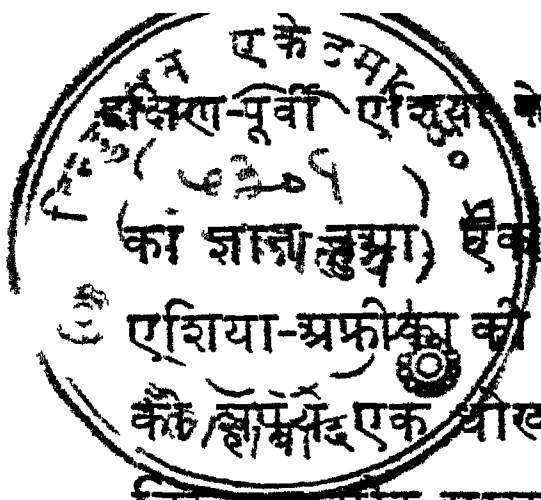
का ज्ञान हुआ) एक माया का सहसा उद्घाटन हो गया—कि एशिया-अफ्रीका की मानसिक एकता-मात्र माया है, और बाडुग का सम्मेलन एक धोखा, कि बाडुग की दूसरी शक्तिया जहा विश्वास और आशा का शिकार रही हैं, उसकी सबसे बडी शक्ति चीन उस पचशील की, जो उस सम्मेलन की रीढ रहा था, महज झूठी शपथ लेता रहा है। यह इस बात से और स्पष्ट हो गया कि, यद्यपि भारतीय सरकार ने बार-बार इस बात की घोषणा की थी कि ससार की प्राय साठ राष्ट्र शक्तियो ने चीनी आक्रमण का विरोध और भारत की आत्मरक्षा का समर्थन किया है, तथ्य कुछ और रहा है। हकीकत यह है कि उन बीस राष्ट्रो मे से, जिनको भारत का परम हितू और समर्थक एलान किया गया है, वस्तुत दो ही निस्सदेह अपने-आप स्थिति के खतरे को समझकर भारत के समर्थक हुए, शेष अट्ठारह भारत की प्रार्थना पर। अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्रो की सख्या राष्ट्रसघ मे समूचे सदस्य-राष्ट्रो की सख्या की प्राय आधी है, और जिन राष्ट्रो ने भारत के इस सकट मे उसका समर्थन किया है उनमे दो-तिहाई सख्या उनकी है जो एशिया-अफ्रीका की परिधि के बाहर के राष्ट्र है। इसलिए प्रमाणत भारत को अफ्रीका-एशिया के राष्ट्रो के एका को धोका समझकर उसे अविलब छोड देना चाहिए। वस्तुत 'नानएलाइनमेट' और शाति की राजनीति की घोषणा करने वाले राष्ट्र का एकस्थानीय गुटबदी की सकीर्णता स्वीकार करना स्वय एक 'फैलेसी' है, क्योकि यह नीति एक मानसिक प्रक्रिया है जो सारे विश्व की परिधि मे ही सही होनी चाहिए, और हो सकती है,

मात्र एशिया और अफ्रीका के सदर्भ मे नही । मुझे खुशी है कि यह धोखा आज सहसा टूट गया है । हमे आज स्वतत्र रूप से एशिया-अफ्रीका के एक-एक राष्ट्र के पास अपने प्रतिनिधि भेज-कर यह समझाने की कोशिश करनी पड रही है कि हमारे ऊपर चीन ने जो हमला किया है वह सही है, और कि वह हमला है, सीमाप्रात का झगडा नही । वस्तुत इस बात का हमे दलील देना ही हमारे पक्ष को कमज़ोर कर देता है कि हमारे सीमाप्रात के इन-इन इलाको पर चीन ने अधिकार किया है । यह तर्क वकीलो का है कि छुरा खाल को खरोच कर ही रह गया है अथवा दो इच जिस्म के भीतर घुस गया है । हमारा कहना तो सकेद्रित और मात्र यह होना चाहिए कि शातिप्रिय निरीह पडोसी के ऊपर प्रसरलिप्सा से सयुक्त चीन ने हमला किया है, कि वह हमला अनजाने मासूम राष्ट्र पर हुआ है, कि वह हमला अब केवल भारतीय सरकार की पर-राष्ट्र नीति का जाती मसला नही रह गया है बल्कि राष्ट्र के दूर के छोरो तक को इसने झकझोर दिया है और समूचा देश—बाल-बृद्ध-युवा, नर-नारी—एक प्राण होकर इस हमले का प्रतिकार कर रहा है और उसकी यह शपथ हो गई है कि जब तक एक भी चीनी अनैतिक रूप से भारत की सीमा पर रह जायगा तबतक भारत शस्त्र नही डालेगा ।

तो इस एशिया-अफ्रीका के राष्ट्रो के एका की यह माया अब हमे छोडनी होगी और यह याद रखना होगा कि एक ऐतिहासिक कारण से—आजादी की लडाई लड़ने के कारण, समान भावबोध के कारण, एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रो में

तथाकथित एका हो गया था। उनमे कोई खास अनिवार्य स्वाभाविक सबध नही था। स्थिति उन व्यक्तियो की-सी थी जो एक ही सडक पर एक ही ओर चलकर एक ही दिशा को जा रहे हो, पर ऐसा करने वाले सारे व्यक्ति एक ही विचार से प्रेरित एक ही उद्देश्य से और एकसाथ चल रहे हो, यह कुछ आवश्यक नही।

भारत की पक्षनिरपेक्ष राजनीति साधु है और पक्षनिरपेक्ष वह बनी भी रहनी चाहिए। पर इसका मतलब यह नही कि यह शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र न समझे। अफ्रीका और एशिया के आज के स्वतत्र राष्ट्र अनेक कारणो से, अपने-अपने कारणो से, पक्षनिरपेक्ष है। कुछ तो इस कारण कि उनको दोनो पक्षो से सहायता चाहिए, कुछ इसलिए कि वे दोनो से डरते है, कुछ इसलिए कि दूसरे पक्षनिरपेक्षो के प्रति उनकी ईर्ष्या है।

आज वामपक्ष की राजनीति के भी अनेक पापक पडित नेहरू की ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्तर्गत भारत के बने रहने की नीति की सार्थकता को समझने लगे है। उसका निश्चय अचरज का लाभ हुआ है कि ब्रिटेन इतने मूल्यवान शस्त्रास्त्र भारत को निर्मूल्य दे रहा है केवल इस सहज शर्त पर कि भारत अपने आत्मसमान की रक्षा कर उन्हे लौटा दे। और यह शर्त भी वस्तुत वह शालीन भावबोध है जो प्रत्येक उदार व्यक्ति उपकृत के प्रति उपकारचेता होते वक्त इसलिए करता है कि वह व्यक्ति अपने को याचक की स्थिति मे न पाए। फिर एक बात और। अमेरिका से हमे शस्त्रास्त्र की सहायता लेने मे कोई हिचक नही होनी चाहिए। हम अपनी योजनाओ के

विकाम के लिए उमसे धन या दूमरी वस्तुओ की महायता लेते रहे हैं आज हमारी नई विपद् के सदर्भ मे सहायता की वस्तुओ का मात्र रूप बदल गया है और हम, वजाय और चीजो के, शस्त्रास्त्र लेने लगे है। इम प्रकार की सहायता का अच्छा-बुरा होना लेने वाले की चित्त-वृत्ति पर निर्भर करता है। यदि लेने वाला राष्ट्र देने वाले राष्ट्र का पिछलग्गू है तव तो निश्चय शस्त्रास्त्र स्वीकार करना मात्र याचना है, एक नए प्रकार की दामता का परिचायक है, पर यदि लेने वाला राष्ट्र अपना व्यक्तित्व स्वतन्त्र चेतना से समुन्नत रखता है तव वह मात्र मित्रराष्ट्र की उदारता का सचयन करता है। इस बात के कहने की आवश्यकता नही कि भारत अमेरिका का क्या ससार की किमी शक्ति का उपासक या पिछलग्गू नही। साथ ही वह इम बात को भी नही भूल सकता कि जहा अफ्रीका और एशिया के पडोसी तथा निकट के राष्ट्र बडी मुश्किल से भारतीय आत्मरक्षा का समर्थन कर पाए है, दक्षिणी अमेरिका के दूर के देशो ने सहज नीति से उसका समर्थन किया है और चीन की प्रवचना और आक्रमण को धिक्कारा है। दक्षिण अमेरिका के उन राष्ट्रो से अनायास ही हमारा मित्रभाव रहेगा।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्र इस बात को, भारत पर चीनी आक्रमण के सदर्भ मे, भली प्रकार समझ ले कि चीन का रुख आकाश मे प्रलयकर धूमकेतु का उदय है और यदि उन्होने इस तथ्य को न समझा तो उनकी साझ पर इस झुकती हुई प्रलयरात्रि के पार जगकर सूर्योदय देखने का भी उन्हे अवसर न मिलेगा।

४ | चीनी हमला और दक्षिण-पूर्वी एशिया

चीन का भारत पर हमला हुआ है और उस हमले की परिधि सीमा के झगडे से कही परे है। यह एक देश का दूसरे देश पर उमे जीतने के लिए हमला है। हमले की यह योजना पिछले पाँच सालो से चीन बनाता रहा है और हल्की-फुल्की चोटो से भारत की प्रतिक्रिया का अदाज लेता रहा है।

ऐसा नही कि माओ के चीन ने कोमिनताग अथवा जापानी शत्रुओ से नजात पाने के बाद ही, द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् १९४७ मे ही, अपनी विजित सीमाओ को स्वायत्त करने की घोपणा कर दी हो। भारत से नेफा लेने का विचार उसका उस योजना के सदर्भ मे बना जो अपनी स्वतत्रता के दस बरस बाद चीन ने बनाई। १९५७ मे उसने अपने पैंतरे शुरू किये और बातचीत और समझौते का चेहरा ओढ सालो वह अपनी चिट्ठियो और रेडियो के प्रचार द्वारा आक्रमण की नैतिकता के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता रहा और सन् ५९ मे उसने सक्रिय सैनिक उद्योग आरभ किये। सन् ६२ के सितबर से ही उसके धावो के दौर शुरू हुए जिनकी परिणति प्राय डेढ हजार मील लबे मोर्चे पर एक साथ आक्रमण द्वारा

अक्तूबर के अन्त मे यथावत् हुई।

सन् ४७ से ५७ तक दस साल का यह कालांतर उस मात्रा के लिए आवश्यक था जो अपने चीनी प्रसर का "माइन काम्फ" लिख रहा था। सारा कार्य उस योजना के अनुकूल था जिसकी पहली मंजिल तिब्बत पर अधिकार कर तय की गई। ऐसे बड़े कार्यों को हाथ मे लेते वक्त चीन ने बराबर अवसर का लाभ उठाया है। वह जानता है कि अमेरिका साम्यवाद और साम्यवादी देशो का तो सदैव और सर्वत्र विरोध करना ही है, करेगा ही, चीन का विरोध वह विशेष उत्साह से करेगा। इसलिए योजना के विशेष लक्ष्य को सर करने के पहले वह देख लिया करता था कि अमेरिका के हाथ खाली तो नही। १९५० मे चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया जब अमेरिका के हाथ कोरिया मे फसे थे। अमेरिका निस्सदेह तब कोरियाई युद्ध मे बुरी तरह फस गया था क्योकि राष्ट्रसघ तो बराये नाम था, वस्तुत अमेरिका ही वह लडाई लड रहा था। मैं उन दिनो अमेरिका मे ही था और नगर-नगर मे कोरियाई लडाई के लिए रगरूटो की भर्ती मैने देखी थी, यहा तक कि कान्सक्रिप्शन (अनिवार्य भर्ती) तक की वहा नौबत आ पहुची थी। उत्तर कोरिया की ओर से वह लडाई रूस की मदद से चीन ने ही लडी और उस लडाई मे प्रोपेगेण्डा और प्रचार का उपयोग अमेरिका के विरुद्ध उसने वैसे ही किया जैसे वह आज भारत के विरुद्ध कर रहा है। कोरिया की लडाई हाल ही खत्म हो चुकी थी जब सन् ५२ मे मै पिकिग मे था, वहा आयोजित शान्ति सम्मेलन मे भाग लेने वाले भारतीय शिष्ट-

मण्डल (डेलीगेशन) के सदस्य के रूप मे। और मैने युद्ध मे अमेरिका द्वारा किये गए तथाकथित कीट-विष के प्रयोग के अवशेष देखे, जिनपर सहज ही विश्वास कर लिया था, और जिनपर विश्वास कर लेना सचमुच ही सहज इसलिए था, कि अमेरिका हीरोशिमा और नागासाकी का अणुबम द्वारा विध्वंस कर चुका था, जिससे उसके विरुद्ध इस प्रकार की किसी बात पर विश्वास कर लेना स्वाभाविक था। आज मैं समझता हू, वह सारा झूठ था और झूठ उसे इसलिए कह रहा हू कि मैने अपने देश के ऊपर उसके आक्रमण के सिलसिले मे चीन के झूठे प्रचार को भरपूर देखा और सुना है।

बात मैं अमेरिका के हाथ बझे होने पर मुल्कों पर चीनी आक्रमण की कर रहा था, तिब्बत पर चीन के आक्रमण की बात। चीन ने अमेरिका को अपनी निर्मूल मानव सस्थाओं की कोरियाई मोर्चो पर झोककर फसा रक्खा और उधर तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। तिब्बत निस्सदेह चीन का उपराष्ट्र रहा था और भारत तथा इग्लैड दोनो ने उनके इस सबध को स्वीकार कर तिब्बत को चीन का अन्तरग माना था। स्वतन्त्र भारत के प्रधानमत्री ने उस स्थिति के सधिपत्र पर दो बार हस्ताक्षर भी किये थे, फिर भी तिब्बत मे चीन का वह प्रवेश आक्रमण ही था, क्योंकि चीन 'सफेद जातियो की जिम्मेदारी' के हथकडे सभालता हुआ बडी सेना के साथ प्रतिकूल और विरोधी तिब्बत मे घुसा था। अमेरिका के हाथ फसे थे।

इसी बीच दो दिशाए और थी जिनकी जीतने की योजना

माम्रो के 'माइन काफ' मे बन चुकी थीं पर जिसे लाचारी के कारण चीन सम्पन्न न कर सका। इनमे से एक, उनके द्वार पर ही, हागकाग था, दूसरा थोडी ही दूर पर, प्राय उसी दिशा मे, फारमूसा था जहा उसकी उखाडी हुई राष्ट्रशक्ति कोमिनताग ने चाग काई शेक की अध्यक्षता मे शरण ली थी। पर इनका लेना लाहे के चने चबाना था क्योकि इनको लेने के उपक्रम मे तृतीय महायुद्ध का आरभ हो जाना अनिवार्य था। हागकाग इग्लैंड का है और फारमूसा कोमिनताग पर वरदहस्त रखे अमेरिका का, जिसके युद्धपोत चीन और फारमूसा के बीच बराबर पेट्रोल करते रहते है। वर्ना चीन जैसे दैत्य के लिए हागकाग, या फारमूसा ही, मक्खी से कुछ अधिक औकात नही रखता था। इतना ही नही कि उस दिशा मे सिवा वक्त-बेवक्त कुछ बडबडा देने के चीन चुप रहा, बल्कि फारमूसा के छोटे-मोटे आक्रमण तक उसने बर्दाश्त किये।

जब उधर कोई बस न चला तब चीन दक्षिण की ओर मुडा। यह जरूर था कि शरणार्थी दलाई लामा और तिब्बत के पक्ष मे कुछ राजनीतिक दलो ने आदोलन कर भारत के विरुद्ध चीन को शिकायत का एक मौका दिया पर उन आन्दोलनो से भारतीय सरकार का कोई सबध न था। इस सबध के अभाव मे चीन को भारत से झगडने का कोई अवसर नही मिला, फिर अमेरिका के हाथ भी खाली थे जिससे भारत पर आक्रमण तब न हो सका। भारत पर चढाई भी तबतक इतनी आसान न थी जबतक कोरिया मे होने वाले सैनिक तथा अस्त्रो आदि के नुकसान की पूर्ति न कर ली जाय और तिब्बत को पूर्णत

चीन का अग न बना लिया जाय, जिससे चीन तिब्बत मे बैठकर भारतीय सीमा पर अपना ध्यान पूर्णत सकेद्रित कर सके। इसके लिए छ साल का अवसर काफी था।

इस बीच चीन ने कुछ अत्यन्त महत्त्व के राजनीतिक कार्य किये। वियतनाम और लाओस ने अपने फ्रासीसी प्रभुओ से विद्रोह कर साम्यवादी अभिरुचि घोषित की थी जिससे फ्रास की मदद को अमेरिका उधर जा फसा था। चीन को रूस के साथ उस लडाई मे वियतनाम और लाओस की सहायता के लिए पडना पडा। इससे चीन स्वयमेव कुछ फसे होने के कारण भारत की ओर पूरा ध्यान तो न दे सका पर उसे उसके पडोसियो से अलग करने का प्रबध उसने सोच लिया।

हिमालयवर्ती अनेक देशो से उसकी सीमा लगी हुई है। उसने सीमा व्यवस्था के बहाने अपनी कूटनीति का भरपूर उद्योग किया। बर्मा से फिर समझ लेने का विचार कर उसने बगैर किसी दिक्कत के सीमा निपटारा कर लिया। दो साल पहले नेपाल मे जो प्रजातात्रिक विधान के विरोध मे राजकीय रूढिवादी प्रतिक्रिया हुई—जिसमे सभवत अमेरिका, इग्लैड और पाकिस्तान का भी हाथ था, कम से कम उसे उनका साधुवाद तो मिला हा—उसको, साम्यवादी तो क्या साधारण प्रजातान्त्रिक मान्यताओ के सर्वथा विरोध मे, चीन ने न केवल स्वीकार कर लिया बल्कि धन-जन से उसकी सहायता की घोषणा की, नेपाल के विधाताओ को बुला-बुलाकर पिकिंग मे उनका सम्मान किया और लासा से काठमाडू तक सडक बना ली जिसके अर्थ और उपभोग का अटकल लगाया जा सकता है।

इससे दिल्ली और काठमाडू के बीच की सडक का प्रतिकार हो गया और अगर नेपाल सचेत न हुआ, उसने भारत की मित्रता का रहस्य न समझा तो निश्चय वह चीनी अजगर के जबडो मे समा जायगा। भारत और नेपाल के बीच का मन-मुटाव केवल भारतीय प्रजातान्त्रिक प्रतिक्रिया के कारण ही नही, चीन के उस दिशा मे प्रोत्साहन के कारण भी है।

पाकिस्तान से भी चीन की सीमा लगी हुई है। कश्मीर के कारण ऐसा होना अनिवार्य था। पाकिस्तान का सम्बन्ध अन्य देशो से, विशेषकर 'नाटो' और 'सीआटो' की शक्तियो से होने के कारण चीन जानता है, पाकिस्तानी सैन्य-शक्ति से, बगैर अमेरिका और इग्लैड को मैदान मे उतारे, लोहा नही लिया जा सकता। इसने उसने कश्मीर की ओर इशारा कर सन्धि और सहायता के भुलावे मे उसे लटका रखा है। साथ ही चीन ने पाकिस्तान को उकसा भी दिया कि जब भारत पर वह आक्रमण करे तब पाकिस्तान पैतरे बदल भारत पर कश्मीर आदि के अपने दावे करे और भारत को सकट मे मजबूर करके जो कुछ मिल सके उससे ले ले। खैर, इस तरह चीन ने पाकिस्तान को भारत से अलग, उसका शत्रु और अपना हिमायती बना लिया।

अब रह गये सिक्कम, भूटान और भारत। सिक्किम और भूटान की न केवल अपनी कोई शक्ति नही है बल्कि उसकी बाहरी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी भारत की है। इससे उनसे निपटना भारत से निपटना था, और चीन अब भारत की ओर मुडा। उसने हिमालयवर्ती राष्ट्रो से इस प्रकार अलग-अलग

समझौता कर लिया था और पिछले पाच वर्षो मे अपनी शक्ति बढा तथा तिब्बत मे नौ साल तक सकेन्द्रित रह, अब वह भारत की ओर अभिमुख हुआ। इस बीच वह भारत को छोटे-छोटे सीमा सम्बन्धी प्रसङ्गो मे छेड-छेड उसके विरुद्ध रेडियो मे विदेशो मे प्रचार भी करता रहा, जिसका भारत को न पता था, न आशा थी, यद्यपि देश की राजनीति के लिए यह अक्षम्य था।

भारत पर सीधा आक्रमण करने के लिए चीन की अपना नीति के अनुसार यह आवश्यक था कि अमेरिका के हाथ कही फसे हो। पिछले महीनो मे वह अवसर आ गया। अमेरिका ने दुर्भाग्यवश हाल के नवोदित साम्यवादी राष्ट्र क्यूबा के सम्बन्ध मे कुछ तनातनी पैदा कर दी जिस तनातनी की सरगर्मी को रूस ने क्यूबा मे पहुचकर युद्ध की स्थिति तक पहुचा दिया और महान् सामरिक विस्फोट की आशका क्षण-क्षण हो चली। सारा ससार ज्वालामुखी के मुह पर खडा था। चीनी अजगर मुस्कराया, उसने लद्दाख तथा नेफा पर जबडा मारा।

यह विशेषकर तब हुआ जब अमेरिका के हाथ क्यूबा मे बुरी तरह रूस के साथ फस गये थे और जब हिन्देशिया की मूर्खता ने उसे अजगर के जबडो मे डाल दिया था। दूसरे बाडुग का प्रश्न (जिसे हिदेशिया ने उठाया था) और उससे भी बढकर एशियाई खेल मे हिदेशिया और भारत का परस्पर मनमुटाव इतने जोरदार मसले न थे जिनकी वजह से हिंदेशिया चीन की ओर झुक जाता। ये घटनाए उस स्थिति की परिणति विशेषकर उस परिणति के प्रति सकेत थी जो छिपे-छिपे

निरन्नर चीन के प्रति हिंदेशिया के आग्रह को रूप देती जा रही थी। इनसे कही बडी बात चीन और हिंदेशिया की मैत्री के भवन मे हो चुकी थी जिसका उदाहरण ससार के इतिहास मे नही। वह यह कि हिंदेशिया के चीनियो को दो-दो देशो मे नागरिक अधिकार प्राप्त थे, चीन मे भी, हिंदेशिया मे भी।

भारत जब सर्वथा अकेला हो गया तब चीन ने उसपर क्यूबा की कशमकश के वक्त हमला किया। भारत चीन की दुरभिसंधि से अपरिचित होने के कारण, पचशील की शपथ लिए पडोसी के युद्धविरत तथा शातिव्रती पडोसी पर आक्रमण का गुमान भी न कर सकने के कारण, भारत पहले तो लड-खडाया, और जो अपनी चौकियो से पीछे हटते हुए आक्रमण का जवाब भी दिया तो केवल यह समझकर कि यह बस सीमा का छोटा-मोटा झगडा है जिसने तूल पकड लिया है और शीघ्र निपटा लिया जायगा। पर जब बीस-बीस हज़ार की डिवीजन की डिवीजन चीनी सेना तोपो और दूसरे हथियारो के साथ, समूची योजना के साथ, कश्मीर से नेफा तक की प्राय दो हजार मील की सीमा पर (तिब्बत मे ढाई-तीन लाख सेना खडी कर) हमला करने लगी तब भारत ने जाना कि यह सीमा का झगडा नही, चीन की प्रसर-नीति का परिणाम है। और वह सजग होकर उठा और उसने प्रत्याक्रमण प्रारभ किया। पर तब तक उसकी सीमा का बहुत बडा भारतीय भाग चीन के हाथ मे जा चुका था। भारत ने देशव्यापी आपद् की घोषणा की। समूचा देश उस आपद् का सामना करने को एक प्राणी की तरह मैदान मे आ खडा हुआ। चारो ओर से जवान नेफा

की ओर चल पडे। नेता ने धन मागा—बच्चो ने अपने गोलक खोल खरीज़ भेज दी, सुहागिनो ने अपनी चूडिया, मेहनतकशो ने अपनी तनख्वाहे। नेता ने जवान मागे—बहनो ने अपने भाई निछावर कर दिये, सुहागिनो ने अपने मर्द, माताओ ने अपने लाल।

चीन सकते मे आ गया। उसे आशा न थी कि भारत इतना सजग है कि अपनी आजादी का मोल वह जान मे चुकायेगा और उसने फूहड घिनौने प्रचार शुरू किये—नेहरू देश की नारियो के तन से गहने छीन रहा है, मजूरो-किसानो के पेट की रोटी! और जब भारतीय कम्युनिस्टो की केंद्रीय समिति ने प्रस्ताव पास कर अपना निस्सीम सहयोग प्रधानमत्री को दिया तब चीन के रेडियो ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को प्रतिक्रियावादी और अमरीकी साम्राज्यवाद का ज़रखरीद गुलाम कहकर धिक्कारा। पर जब भारत के सभी राजनीतिक दलो ने, सामाजिक सस्थाओ ने, लेखक सघो ने अपना सर्वस्व राष्ट्र की सुरक्षा के लिए नेता को समर्पित कर दिया तब चीन के कालिख लग गई और उसने एक नया रुख अख्तियार किया। बाईस नवम्बर को उसने ऐलान किया कि वह लडाई बद कर देगा और पहली दिसम्बर को उसके सैनिक सात नवम्बर सन् १९५९ की चानो अधिकार-रेखा के पीछे चले जाएगे। आज वे उस दिशा मे हट जाने के प्रचारात्मक उपक्रम भी कर रहे है पर हमे बखूबी मालूम है कि प्रसर-लिप्सा थोडे से नही शात होती। वह ऐसी आग है जिसमे जितनी भी ज़मीन डालो, ईंधन का काम करेगी और प्रसर का उदर बढता जायेगा।

पर आज का भारत सीमा पर सन्नद्ध खडा है। वह सारा लेकर ही रहेगा जो उसके अनजाने चीन ने ले लिया है।

और जो आज भारत की स्थिति है वही हर दक्षिण-पूर्वी एशियाई मुल्क की होने वाली है, यह जानकर एशिया के मुल्क अपनी रक्षा के लिए, पडोसी राष्ट्र पर योजनाबद्ध चढाई के प्रतिकार के लिए, एशियाई राष्ट्रों की अधिकतर हाल की पाई स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाएं।

५ | भारत का वर्तमान संकट और राष्ट्रों की सलाह

भारत के वर्तमान महान् सङ्कट मे उसके मित्रो और शत्रुओं दोनो का भेद खुल गया है। इसने जो अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्रो की तथाकथित एकता का भडाफोड किया है वह तो एक राजनीतिक रहस्य का उद्घाटन है ही, इन महाद्वीपो के नये राष्ट्रो के इस सदर्भ मे प्रतिक्रिया का भी कुछ कम स्पष्टीकरण इससे नही हुआ।

छ साल हुए बडी धूमधाम से बाडुग मे एशियाई राष्ट्रो का एक सम्मेलन हुआ। सूक्ष्म राजनीतिक के विद्यार्थी को सम्मेलन की गतिविधि और उसके परस्पर विरोधी भाषणो से यह जानते देर न लगी कि चाहे राष्ट्रो मे परस्पर विरोध के विशेप कारण न हो, निस्सदेह परस्पर स्नेह की भी कोई विशेष भूमि नही। फिर भी चोटे हसकर झेल ली गई और एक सतही एकता का भाव बनाये रखा गया। चीन के प्रधानमत्री चाऊ-एन-लाई ने वहा असाधारण बर्दाश्त और राजनीतिक शिष्टता का परिचय दिया जिससे स्पष्ट अमरीकी परिधि के भीतर के एशियाई राष्ट्रो की भी, विरोध मे, कुछ विशेष न चली और बाडुग की घोषणा को 'आवाजए खलक नक्काराये खुदा' मान

लिया गया। भीतरी विरोधों का यह आभास फिर भी मिले बगैर न रहा कि ममले कई तरह के है—पूर्वी राष्ट्रों के अपने, पश्चिमी एशियाई अरबों के अपने, अरबों और तुर्कों के अपने, पाकिस्तान और ईरान के अपने। फिर भी पडित नेहरू के दिए पचशील के मत्र को रीढ बनाकर सब प्रतिनिधियो ने शपथ ली, यद्यपि जैसा उसके आक्रमण से प्रकट है—चीन की शपथ सर्वथा झूठी थी। आज व्यक्त हो गया है कि पचशील इतना नीति नही जितना नैतिक आदर्श है, जिसे जो राष्ट्र चाहे बरते, चाहे न बरते।

बाडुग की तथाकथित एशियाई एकता का राज दो साल हुए बेलग्रेड मे खुला। यूगोस्लाविया ने एशिया-अफ्रीका मे एक नई पक्ष-निरपेक्ष नीति का अवलबन किया था और मिस्र तथा भारत से विशेष भाईचारा का व्यवहार निभाया था। पर बेलग्रेड मे जो एशियाई-अफ्रीकी और पूर्व-यूरोपीय राष्ट्रो का सम्मेलन हुआ तो वह बजाय समान भूमि के, बजाय सतही भूमि के विरोधी द्वन्द्वो का अखाडा साबित हुआ, और विरोधो को सभालते-सभालते जो वहाँ की कार्यवाही की रिपोर्ट छपने मे देर लगी तो ससार पर यह भेद खुलते जरा देर भी न लगी कि राष्ट्रो मे एकता कितनी है, विरोध कितना है। उसका स्पष्ट परिणाम, और महत्त्व का परिणाम, यह हुआ है कि आज दूसरे बाडुग सम्मेलन का, कुछ राष्ट्रो को छोड, प्राय सर्वत्र विरोध हुआ है। भारत तो किसी स्थिति मे उसके सभावित अधिवेशन मे भाग लेने को तैयार नही। और यह प्रस्ताव भी सबसे अधिक उस हिदेशिया का है जिसके पास न तो अपना

कोई पौरुष है और न अपनी कोई नीति। लगता है, उसका बस एक ही आचरण शेष रह गया है—चीन के मनोभावो को कार्यरूप मे परिणत करने का साधन बनना। स्थिति यह है कि यदि चीन का दबदबा उसके भारतीय आक्रमण के बावजूद बढा, और उसके साम्राज्यवादी दाखने तोड नही दिये गए, तो सबसे बडा अहित स्वय हिंदेशिया का होगा और चीनी सुडे-टनलैड' का 'आस्ट्रिया' वही बनेगा, क्योकि वही समूचे एशिया मे एक राष्ट्र है जहाँ चीनियो को स्वदेश चीन के अतिरिक्त स्वय हिंदेशिया मे भी नागरिक हक हासिल है। चीनी आक्रमणो के सदर्भ मे जब-जब चीन की उन राष्ट्रो मे प्रसर की नीति लागू होगी तब-तब उनमे रहने वाले चीनियो की स्थिति आक्रान्ता के 'बर्छे की नोक' (स्पियर हेड) की हो जायेगी और तब आक्रान्त राष्ट्र की कमजोरी उसी मात्रा मे प्रकट और सिद्ध होगी जिस सख्या मे चीनियो का वहा निवास होगा। और इस प्रकार के प्रवासी चीनियो की सख्या दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्रो मे कितनी है, यह लिखने की आवश्यकता नही। बस इतना ही कह देना पर्याप्त है कि आक्रमण के उस काल इन प्रवासियो की उस महती सख्या के कारण आक्रान्त राष्ट्र भयानक सङ्कट मे पड जायेगा।

भारत के प्रधानमन्त्री पडित नेहरू के चीनी आक्रमण होने के बाद ससार के राष्ट्रपतियो से जो पत्र लिखकर इस अतर्राष्ट्रीय नैतिक अनाचार के विरुद्ध अपील की है, उसके उत्तर मे एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रो ने कुछ नेक सलाह दी है। अभी तक भारत पिछले पद्रह सालो से दूसरो को सलाह

देना रहा है, अब उसके स्वय सलाह सुनने का अवसर आया है। और सलाहे एसी आई है जिनसे भारत को चोट लगी है, झुझलाहट हुई है। पर, तीखी प्रतिक्रिया के बावजूद, सलाहे तो हमे वर्दाश्त करनी ही होगी। गनीमत है कि ये सलाहे आचरण के लिए नही, मात्र देने के लिए दी गई है। अधिकतर ये 'पोलिटिकल काम्नप्लेस फिब' या 'एरैट नान्सेन्स' है जिन्होने, और कुछ हो या न हो, कुछ बाते निश्चय ही व्यक्त कर दी है। यहा उन सलाहो का विधिवत् उल्लेख अथवा उनपर टिप्पणी अपेक्षित नही, मात्र उनके पीछे की मनोवृत्ति पर यहा प्रकाश डालना अभीष्ट है।

पहली और सामान्य साधारण सलाह तो यह रही है कि 'भारत और चीन मिल-बैठकर शान्तिपूर्ण साधनो से अपने सीमावर्ती झगडे निपटा लें तो हमे प्रसन्नता होगी।' इसका अर्थ पहले तो बस इतना है कि आप मात्र औपचारिक वक्तव्य कर रहे है, और ऐसा केवल इसलिए कर रहे है कि या तो आप स्थिति मे दिलचस्पी नही रखते, या अधिक सभवत, आप इस आक्रमण के खतरे से दूर है, यह बात अलग है, (जो सभवत हमारे रेडियो आदि द्वारा तथ्योद्घाटन की कमजोरी के कारण है) कि आप पहले यह समझे कि यह सीमावर्ती झगडा नही प्रसर-नीति द्वारा सयोजित आक्रमण है, और कि यह आक्रमण उस पचशील के सत्यदृष्टा शातिप्रिय पडोसी भारत पर कृतघ्नतापूर्वक हुआ है जिसके सालो साल के राष्ट्र सघ मे किये उपकारो का यह आक्राता द्वारा, बाडुग मे पचशील के शपथ ग्रहण के बावजूद, प्रत्युपकार है।

मै उन जापान आदि राष्ट्रो की बात नही कहता जिन्होने इस आक्रमण को धिक्कारा है, केवल उनकी कह रहा हू जिनके साथ भारत का प्राय चोली-दामन का साथ रहा है, उन मिस्र (यू० ए० आर०—सयुक्त अरब प्रजातत्र), घाना आदि मित्रो की। मिस्र का रुख पडित नेहरू के नैतिक आक्रोश के परिणाम मे बदल गया है, यद्यपि उसके पत्र 'अल अहराम' ने अभी तक बलपूर्वक स्पष्ट वक्तव्य नही किया। चीन के सन्धिमित्र रूस से प्रापणीय लाभ के सदर्भ मे नि स्सदेह मिस्र के अस्पष्ट सदेह-प्रवण वक्तव्य का अर्थ समझा जा सकता है। फिर भी भारत उलटकर उससे पूछ सकता है कि सन् सत्तावन मे मिस्र मे स्वेज-सबधी एक घटना घटी थी—इग्लैड और इस्रायल ने उस पर सयुक्त हमला कर दिया था—उस समय भारत ने उसे हमला घोषित कर राष्ट्र सघ की ओर से नील की घाटी की रक्षा के लिए अपनी सेना भेजी थी और दोनो राष्ट्रो की खीझ का वह अनायास शिकार हुआ था। अगर भारत तब मिस्र के प्रति सामान्य राष्ट्रो की भाति औपचारिक वक्तव्य करता अथवा सदेह या द्वैधीभाव का आचरण करता तब मिस्र की प्रतिक्रिया क्या होती ? प्रसन्नता की बात है कि मिस्र ने अब स्थिति को ठीक समझकर भारत और सत्य के अनुकूल रुख लिया है।

घाना साधारणत मित्रराष्ट्र है, ब्रिटिश राष्ट्र सघ का भारत के साथ सदस्य है। उस मित्रराष्ट्र का सदस्य पाकिस्तान भी है पर नि स्सदेह वह अमित्र राष्ट्र है। पर मजे की बात है कि पाकिस्तान से भी कही ज्यादा बदसूरती का आचरण घाना कर

रहा है। उसके राष्ट्रपति एनक्रुमा ने, भारत ने जिनका असाधारण आतिथ्य किया था, इग्लैड के प्रधानमत्री मैकमिलन को पत्र लिखा कि भारत को वे शस्त्रास्त्र न दे वरना वह सीमावर्ती झगडा विश्वयुद्ध का रूप धारण कर लेगा। इस वक्तव्य मे ब्रिटिश राष्ट्र सघ मे भारत और पण्डित नेहरू की शालीनता, बेलग्रेड की पृष्ठभूमि, रूस मे तदनन्तर प० नेहरू और एनक्रुमा के प्रति सोवियत के प्रकट स्वागतीय आवभगत मे विपरीत अन्तर आदि सभी का डक सम्मिलित था। मैकमिलन ने उस पत्र का समुचित उत्तर भी दे दिया।

एक सलाह यह भी दी गई है, कि इस आक्रमण को विशेषत सामने रखते हुए भारत का अपने पडोसियो या दोनो महाद्वीपो के राष्ट्रो के साथ कुछ बेहतर व्यवहार होना चाहिए। सभवत अनेक लोगो का मत है कि सयुक्त राष्ट्र सघ मे अन्य राष्ट्रो के प्रतिनिधियो, विशेषकर अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रो के प्रति भारतीय प्रतिनिधियो का व्यवहार कुछ अहङ्कारपूर्वक होता है। निश्चय यदि ऐसा है, जो भारतीय सिविल सर्विस वर्ग से सामान्यत अपेक्षित भी है, तो इसका सबल प्रतिकार होना चाहिए। अपनी शालीनता, प्राचीन सस्कृति और बडे भाईपने का दम्भ भारत को कम करना चाहिए।

भारत के दूसरे पडोसी, जिनके साथ उसका कुछ मनमुटाव या झगडा है, नागालैंड, नेपाल और पाकिस्तान है। नागालैंड घर का प्रात है, यद्यपि उसके स्वतत्र 'सोव्रेन स्टेट' होने का नारा लगा है। कुछ राष्ट्रो ने नागाओ को भडकाया भी है, अपने देश से गुज़रने की उन्हे राह दी है और इग्लैंड मे उनके

गद्दार नेताओ को बिठा भी रखा है ताकि फीजो आदि भारत के खिलाफ जब सयुक्त राष्ट्र सघ मे सवाल उठाए तब वे उनकी मदद करे। अगर नागाओ से भारत का व्यवहार बेहतर हो जाय तो, उनका कहना है उसे नागालैंड की सीमा पर इतनी भारतीय सेना न रखनी पडे और उसका उपयोग वह चीनियो के खिलाफ कर ले। नागाओ ने, विशेषकर प्रवासी फीजो ने, चीनियो से लडने के लिए नागाओ की सेवाए अर्पित की है। पर चाहे जितना भी अपना तथाकथित परुष व्यवहार भारत नागाओ के प्रति मृदु कर ले, क्या उनपर विश्वास करना नीति-परक होगा ? यदि लडाई चली तो बाजोङ्ग से शिवसागर पार नागालैंड मे पहुचते आक्रान्ताओ को कितनी देर लगेगी ? और अगर उन्होने नागालैंड पहुच, उसे स्वतत्र राष्ट्र घोषित कर दिया, जो गद्दार नागाओ की माग है, तो सलाह देने वालो की राय मे शायद भारत की अपनी ही सीमा पर अपने ही राष्ट्र का अङ्ग काटकर स्वतन्त्र और शत्रु राष्ट्र की कील अपनी कोख मे चुभा रखनी चाहिए। और अगर ऐसा होना सभव कर दिया जाय तो शत्रु जो स्वतन्त्र नागालैंड को पीछे कर आसाम की पतली पाटी लाघ पूर्वी पाकिस्तान से मिल जाय तो ? फिर तभी अगर पाकिस्तान की दुरभिसन्धि फले और जिस 'प्लेबिसिट' की उसने कश्मीर मे पुकार की है उसकी आसाम मे भी वह करे तब ? फिर तो नेफा की यह गति (जब तक हम उसे हमलावरो से छीन नही लेते) है ही, नागालैंड और पूर्वी पाकिस्तान के शूल बन ही रहे, उधर आसाम पर लगी बदनजर भी शत्रुओ की फल उठे। फिर नागालैंड से समझौता अगर

न्द्वारो मे करना है तो उनकी माँग तो उसे स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने की है। क्या ससार का कोई देश नागालैड की इस माग को स्वीकार कर सकता है—रूस, चीन और अमेरिका की तो बात ही अलग है? फिर जैसा व्यवहार नागालैड के साथ भारत का है उससे भिन्न अब और हो कैसा सकता है? अगर हम उस दिशा मे किसी नरमी की बात सोचे भी, कश्मीर के से सम्बन्ध की बात भी, तो वह अपने इस खतरे के समय कैसे सोच सकते है?

नेपाल को हमने बिलकुल नाराज नही किया है, और न हमारा उसके प्रति साधारण ईमानदार प्रजातन्त्र राष्ट्र से भिन्न कोई प्रतिक्रिया अथवा आचरण ही हुआ है। इस सम्बन्ध मे साम्यवाद की शपथ लेने वाले चीन का उसकी प्रजासत्ता को मिटा देने वाली राजसत्ता के प्रति अनुकूल व्यवहार उसकी अपनी शपथ के सर्वथा प्रतिकूल है। भारत ने तो अपने निश्चित अनुदान के सम्बन्ध मे भी आज के नेपाल को निराश नही किया है और अपना नेपाल विकास सबधी सहायता देने को तैयार है। जो भारतीय सीमा पर नेपाली प्रजातात्रिक तत्व प्रजातात्रिक शक्ति के पुनरुद्धार का प्रयत्न कर रहे है उनसे भारत का कोई सबध नही। फिर भी जहा तक हो सके इस सङ्कट-काल मे उनका अनुमोदन निस्सदेह दोनो देशो मे कटुता बढाएगा जो इस वक्त भी कुछ कम नही है। वैसे नेपाल को स्वय सोचना है कि उसका सबध चीन से अधिक श्रेयस्कर है या भारत से? प्रसन्नता की बात है कि इधर वहा के कुछ पत्रो ने इस स्थिति के अनुकूल रुख लिया है।

इसी सन्दर्भ मे पाकिस्तान की पडोसी प्रवृत्ति का सिहावलोकन कर लेना भी कुछ अनुचित न होगा। पाकिस्तान के भारत के साथ कई प्रकार के झगडे है—कश्मीर का, कच्छ का, नदियो के जल का, शरणार्थियो सम्बन्धी प्रश्न का। कश्मीर का झगडा इनमे प्रधान है (वैसे कच्छ का भी भारत के लिए कुछ कम महत्त्व नही जिस पर पाकिस्तान ने सीधा आक्रमण द्वारा अधिकार कर लिया है)। 'प्लेबिसिट'-सम्बन्धी वक्तव्य की एक चूक ने कश्मीर के झगडे को तूल पकडा दिया। वरना बात साफ थी। भारत की स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि मे एक एलान हुआ था—जो देशी राजा चाहे अपनी इच्छा के अनुकूल अमुक तिथि के भीतर पाकिस्तान या भारत के साथ अपना राज्य लेकर सम्मिलित हो सकता है। इसके अनुसार कश्मीर के महाराज हरीसिंह ने भारत को कश्मीर समर्पित कर दिया। अन्य राज्यो की ही भाति कश्मीर की राज्यसत्ता भी भारत से आ मिली। वैधानिक उपचार समाप्त हो गया।

खैर, पर बात समाप्त नही हुई और सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वावधान मे कितनी ही बाते हुई जिनमे से कुछ एक को कुछ दूसरे को पसन्द नही आई और झगडे की स्थिति, कश्मीर जनता तथा उसकी विधान सभा के निर्वाचन आदि द्वारा अभिव्यक्त मत के बावजूद, आज भी बनी है। पाकिस्तान ने चीन के साथ भारत के खिलाफ छिपे-छिपे कुछ प्यार का इजहार किया है। हम यह यहा नही कहना चाहते कि पाकिस्तान का यह आचरण नेपाल के चीन के प्रति आचरण से कितना भिन्न है, पर इतना जरूर कहेगे कि भारत को जर करने का

मौका पाकिस्तान ने अच्छा सोचा है। पाकिस्तान चीनी हमले और उसके नतीजे को तो नित्य अपने अखबारों, रेडियो, भाषणों आदि में जाहिरा (परदे के पीछे जो हो रहा है वह अलग है) सराह ही रहा है अब उसने वह रुख भी बढ़कर अपना लिया है जो कायर राष्ट्र शत्रु की बेबसी में लिया करता है। उसने स्पष्ट घोषणा की है कि हमें भारत के इसी संकट-काल में अपनी मांग पूरी करनी होगी।

भारत को पाकिस्तान से बात करने में कोई आपत्ति कभी नहीं रही है और जब ब्रिटिश कामनवल्थ के सेक्रेटरी समझौते का बीज बो गए है तो कुछ अजब नहीं जो समझौता हो भी जाय। पर निस्सन्देह पाकिस्तान की नियत दुर्दिन में पड़े शत्रु के प्रति ओछी नियत है, गो यह जरूर है कि राजनीति में नैतिक आचरण की अपेक्षा पाकिस्तान से कोई नहीं करता। समझौता यदि मान और ईमान का हो तो भारत निश्चय करेगा, पर पाकिस्तान आदि के इस भारतीय संकट से लाभ उठाने के प्रयत्न का उत्तर एकमात्र भारत को अपने शक्तिमान सिद्ध करने से ही दिया जा सकेगा। यदि भारत ने, जैसा वह कर रहा है, अपनी जनता की शक्ति का उपयोग कर चीन के प्रति दृढता दिखाई और उसके आक्रमण को व्यर्थ कर अपनी भूमि फिर से जीत ली तो पाकिस्तान की तरह के देशों की कमीन अवसरवादी लाभ की प्रवृत्ति का भी वह सफलतापूर्वक प्रति-वाद कर सकेगा।

६ | चीन का सतही मार्क्सवाद और राजनीतिक आत्मघात

चीन ने जो दभ और अहकार का रवैया अख्तियार किया है वह स्वय उसे ही ले डूबेगा। अहकार अपनी ही स्थिति को अहम् समझता है, दूसरो का अपमान ही उसके अहम् की साधना मे इष्ट हो जाता है और अन्तत शत्रुओ की अमित सख्या का सृजन का अहकारी अपनी ही निर्मित प्रतिक्रिया से नष्ट हो जाता है। चीन के अहकार का अजगर निस्सदेह उसे लील जाएगा।

भारत की सीमा की कुछ जमीन जो उसने धोखे और हमारी सुस्ती से ले ली है उससे उसके दर्प और अहकार को आहार मिला है। उसने हमारे अनजाने जो आक्रमण कर हमारी पूर्वी सीमा के कुछ भागो पर अधिकार कर लिया है, उससे उसे विजयी होने का आभास हो गया है और वह समझने लगा है कि उसे, जिस शर्त पर वह चाहे, सुलह करने का हक है।

अपने सभी प्रकार के गन्दे-फूहड-झूठे प्रचार से युद्ध के पहले और उसके दौरान मे, ससार के सामने भारत पर आक्रमण का आरोप लगाकर वह अपने आक्रमण की नैतिकता सिद्ध

करने का प्रयत्न करता रहा है। फिर कुछ सफलता प्राप्त कर उदार विजयी के आडम्बर से अपनी मनमानी एकतर्फा शर्ते हवा मे उसने उछाली है, इस प्रचार-प्रभाव के साथ कि भारत इतना कमजोर है कि चीन जिस मात्रा तक चाहे उसे जीतकर यथेच्छ आचरण कर सकता है और भारत के पास सिवा दूसरो के सामने गिडगिडाकर मदद मागने के कोई चारा नही है।

इसमे सदेह नही कि शाति की शपथ लेने वाले विस्तार-विरोधी नीति के व्रती राष्ट्र को अशाति और आक्रमण-काल में शस्त्रास्त्र की अन्यत्र से याचना करनी होगी, और ऐसा करना सर्वथा नैतिक भी है। यह उस मात्स्यन्याय का निराकरण है जिसमे 'जिसकी लाठी उसकी भैस' हुआ करती है, जिसका परिचय चीन आज दे भी रहा है। यह सही है कि इस प्रकार जब तक निरस्त्र और शातिवादी राष्ट्र अपने पक्ष मे स्थिति समझाने और समाजनिष्ठ ससार को अपनी ओर आकृष्ट करने के उपक्रम करता है तब तक आक्रान्ता अपनी सगठित शक्ति द्वारा उसकी काफी हानि कर चुकता है, पर आधी की शक्ति और गति चाहे जितनी प्रबल, चाहे जितनी तीव्र हो, वह बहकर ही रहेगी, टिक नही सकती, जिससे आक्रमण के दीर्घकालिक होते ही, जो अनिवार्य है, राष्ट्रो की शक्ति नैतिकता के प्रति एकाग्र होकर रहेगी और आक्राता को अन्तत मुह की खानी पडेगी।

इस सदर्भ मे हम जरा इस युद्ध के सावधि सत्य को समझे—चीन ने भारत पर आक्रमण किया है। वह कहता है,

उसका यह आक्रमण नही, भारतीय विस्तारवादी नीति से सचालित उस सरकार के आक्रमण के प्रति उसका यह आत्म-रक्षा मे प्रत्याक्रमण है। उसकी इस नीति की जानकारी के सामने कैफियत देने की भी आवश्यकता नही क्योकि इस प्रसङ्ग का सत्य उनसे छिपा नही है। इस प्रसङ्ग की वास्त-विकता से डरकर ही चीन ने एक ऐसी नीति का अवलम्बन किया है जो उसके-से आचरण की स्थिति मे स्वाभाविक ही आक्रमक राष्ट्र को करना पडता है—उसने अपनी प्रकृत और शपथपूर्वक गृहीत नीति को ही सर्वथा त्याग दिया है। उसने बाडुग मे पचशील की जो अन्य एशियाई राष्ट्रो के साथ शपथ ली थी उसे तो उसने बेशर्मी से तज ही दिया है, अपने समान-धर्मी राष्ट्रो को भी अपनी नई दु शील नीति द्वारा चुनौती दी है।

मार्क्सवादी राष्ट्रो ने कालान्तर मे अपनी वह पुरानी नीति, कि जो राष्ट्र मार्क्सवादी नही, जो हमारे साथ नही, वे हमारे शत्रु है, छोडकर साम्यवादी तथा पूजीवादी राष्ट्रो के साथ सहअस्तित्व की नई नीति स्वीकार की है। चीन (और उसके पिट्ठू अल्बीनिया) ने उसका भी अपनी तग स्थिति मे प्रतिकार किया है और वह अब यहा तक कहने लगा है कि सहअस्तित्व की नीति मार्क्सवाद विरोधी है, उसकी जीर्णोद्धार-कर्त्री है, और कि युद्ध आवश्यक तथा साधनीय है। इसे आज ससार का कोई मार्क्सवादी राष्ट्र स्वीकार नही कर रहा है और सर्वत्र चीन की इस नीति और भारत पर उसके आक्रमण की दबे-दबे निन्दा हो रही हैं।

इस निन्दा ने अब स्वर भी धारण कर लिया है। क्योकि प्राग और रोम के कम्यूनिस्ट काग्रेसो ने खुले जोरदार शब्दो मे इस चीनी नीति की भर्त्सना की है। उन्होने चीन की इस सहअस्तित्व विरोधी, शातिविरोधी नीति को समाजवादी हितो का सहार करने वाली एलान किया है और इतालवी कम्यूनिस्ट दल के नेता तोग्लियाती ने तो भारत के प्रसङ्ग का खुले शब्दो मे उल्लेख करने मे भी परहेज नही किया है। रोम मे हुई पिछली काग्रेस मे सहअस्तित्व और शाति के मसले पर चीनी नीति की निन्दा मे जो प्रस्ताव ६०० प्रतिनिधियो ने पास किया उसका विरोध केवल दो प्रतिनिधियो ने किया जो दोनो चीनी थे। उनमे से एक के दिए भाषण मे किए अनत झूठ के प्रयोग के प्रतिकार मे तो तोग्लियाती ने कहा कि 'प्रिय कामरेड, तुमने जो बाते कही है उनका अस्तित्व नही, वे सर्वथा मिथ्या है, और तुम्हारे झूठ के ज़लजले का यह 'बूमरैंग', मै तुम्हे विश्वास दिलाता हू, लौटकर तुम्हारे ऊपर ही चोट करेगा।'

पश्चिम के राष्ट्रो मे इटली के कम्यूनिस्ट दल की सख्या सबसे बडी है। सारे पाश्चात्य कम्यूनिस्ट दलो ने इतालवी दल की इस चीन सम्बन्धी निन्दा का अनुमोदन किया है और उनकी चीन के सदर्भ मे यह प्रवृत्ति कुछ तत्काल नही उत्पन्न हो गई है। चीन शातिविरोधी जिस आचरण का, जिस निन्दनीय और राष्ट्रघाती भडकाऊ नीति का कुछ काल से निरतर उपयोग करता रहा है वह भारत पर आक्रमण से भी पूर्व की है। मास्को की उस शाति और निरस्त्रीकरण काग्रेस मे मै

भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से मौजूद था जब रूस के प्रधान-मन्त्री और रूसी कम्यूनिस्ट दल के प्रधानमन्त्री निकिता ख्रुश्चेव ने अपने भाषण मे शान्ति के प्रसङ्ग मे भारत और प्रधानमंत्री नेहरू का दो-दो बार उल्लेख किया और चीन या माओ का एक बार भी नही, जिसमे चीनी प्रतिनिधि माओ तुन ने मुह बिचका दिया था और रूस तथा चीन के परस्पर सम्बन्ध मे तनाव कुछ और बढ गया था। रोम की कांग्रेस का प्रस्ताव और तोग्लियाती की कटु प्रतिक्रिया वस्तुत चीनी समरनीति की विरोधी परिणति थी।

अब वास्तविक स्थिति यह है कि चीन कम्यूनिस्ट राष्ट्रों की जमात मे भी शामिल नही, बिलकुल अकेला है। चीन अपने ही दभ का इस कदर शिकार है कि वह ससार के अन्य कम्यूनिस्ट दलो को भी धिक्कारने से नही चूकता। भारतीय कम्यूनिस्ट दल की केन्द्रीय समिति ने जब चीनी आक्रमण को विस्तारवादी हमला एलान कर, चीन को धिक्कारा और दल के सदस्यो को देश के सुरक्षा आदोलन की जन-धन से सहायता करने का आदेश दिया तब चीन की बौखलाहट सुनने के लायक थी। उसने भारतीय कम्यूनिस्ट दल को प्रतिक्रियावादी घोषित किया और उसके विरोध मे अपना ही आचरण दृष्टात रूप मे प्रस्तुत किया, कि किस तरह चीन पर आक्रमणो के समय चीनी कम्यूनिस्ट दल ने उनका प्रतिकार नही किया था। चीन ने पहले तो अपना आक्रमण सिद्धातवादी सिद्ध करने की कोशिश की (जिसका न तो ससार के किसी कम्यूनिस्ट दल को धोखा है, न जिस सहअस्तित्वविरोधी चीनी नीति के प्रति

आक्रोश के अतिरिक्त कोई मोह है) और जब वह उससे चूका तब उसने भारतीय दल को ही धिक्कारना शुरू किया।

अकेला चीन, सर्वत्र से निष्कासित-सा भारत पर टूट रहा है। वह यह भी जानता है कि वह भारत को आत्मसात नही कर सकता। ऐसा कर सकना असम्भव है। साधारणत समार की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति मे ऐसा हो सकना ही सभव नही था, और अब तो साथ ही समूचा भारत उसके नि शेष राजनीतिक दल तक एक व्यक्ति की तरह मन-प्राण से चट्टान की भाति टकराने को सामने खडा है।

अभी-अभी चीन ने अपनी कमीन उदारता का आभास युद्ध वन्द करके दिया है। पर इससे न तो उसका यही सकेत हमे गवारा है कि वह महाबली है, और जब चाहेगा, हमसे जो चाहेगा छीन लेगा, और न यही कि अपनी शातिपक्षीय नीति के कारण ही उसने ऐसा किया है। वह यह भी जानता है कि किस हद तक रूस उसकी मदद कर सकता है। रूस की चुप्पी भारत के हित की रही है, रूस का भारत को वायुयान-विक्रय पर अमल करना चीनविरोधी सत्यनिष्ठ पद्धति का परिचायक है, जिससे, और कारणो के अतिरिक्त, चीन का रूस के प्रति असद्‌भाव बढेगा। सही कि रूस और चीन सधि द्वारा सयुक्त है और रूस चीन की सहायता करने को सन्नद्ध है, रूस वस्तुत उन सारे साम्यवादी राष्ट्रो पर हुए आक्रमण के प्रतिकार मे उनकी सहायता करेगा, पर उनके आक्रमण मे सहायक होकर नही, मात्र उन पर हुए आक्रमण के प्रतिकार मे। क्यूबा का प्रसङ्ग प्रत्यक्ष है, जिससे अमरीकी सभावित आक्रमण का सकट

टलते ही रूस ने अपना हाथ खीच लिया है और जिस प्रसङ्ग मे चीन ने उसे असयत मात्रा मे गालिया दी है, जिस रूसी आचरण को ससार के अन्य राष्ट्रो और स्वय अमेरिका के साथ समस्त साम्यवादी राष्ट्रो ने भी साधुवाद दिया है। इससे जाहिर है कि भारत का प्रसङ्ग न कोरिया का, न क्यूबा का होने से बल्कि शुद्ध चीन के आक्रमण का होने से, इस युद्ध मे रूस चीन की मदद से निश्चय ही हाथ खीच लेगा। वस्तुत उसने खीच ही लिया है, विशेषकर इसलिए कि वह भरपूर जानता है कि इस युद्ध से चीन के ऊपर किसी तरह का खतरा न तो गुजर रहा है, न गुजरने की सभावना है। उसे निश्चय ही यह किसी हालत मे गवारा न होगा कि मित्र राष्ट्र को अकारण और सिद्धात-विरोधी परिस्थिति मे चीन के मात्र अहकारपूर्ण विस्तारवादी नीति के प्रसार मे वह सहायक होकर नाराज करे, न उसकी नैतिकता ही इस प्रकार उस भारतीय राष्ट्र को नष्ट करने मे सहायक होगी जो अनेक अगो मे सयुक्त राष्ट्र सघ के 'फोरम' पर उसका सर्वथा सहायक रहा है।

चीन परिणामत दोनो आर से मारा जाएगा। राष्ट्र सघ मे तो उसे जगह नही ही है, साम्यवादी राष्ट्रो से भी वह प्राय बहिष्कृत है। यह अकेली स्थिति तभी गवारा हो सकती थी जब रूस की तरह वह शक्तिमान, सगठित तथा विकसित होता और अपने उपग्रहो से सहायता—खनिज आदि वस्तुओ की—उसे सहज प्राप्य होती। पर मित्र राष्ट्रो से उसके सम्बन्ध का एलान तो तोग्लियाती ने कर ही दिया है, अपना आतरिक विकास भी उसने कितना किया है यह जानकारो के

लिए अनजाना नही है। सम्भवत. ससार के किसी देश को विकास की दिशा मे इतना नही करना है जितना चीन को, अपने भौगोलिक विस्तार के सदर्भ मे, करना है। उसकी यह प्रसरनीति, विशेषकर भारत के मूल्य पर, उस मित्र राष्ट्र और पडोसी पर आक्रमण कर, अपनी ही जानलेवा सिद्ध होगी।

औरो से ज्यादा स्वय चीन को जान लेना चाहिए कि साधारणत असामरिक उदासीन भारत को भी चुपचाप हडप जाने की शक्ति किसी मे नही है, और जागरूक, अपनी रक्षा मे सन्नद्ध को कोई, विशेषकर अपने घर के भीतर सर्वथा अपाहिज और अपनी गाय सीधी जनता को युद्ध के मोर्चो पर क्रूरतापूर्वक हाक ले जाने वाला चीन तो, किसी हालत मे उससे छीन न सकेगा। हा, चीन स्वय अपनी ही शक्ति क्षीण कर, नष्ट निश्चय हो जाएगा। अकेला हो जाने से, उसे अन्य राष्ट्रो से युद्धावश्यक उपकरण न मिलने से, घर के भीतर अपनी ही स्थिति कठिन होने से, उसे अपने ही प्राणो का अवलब होगा। पर इस स्थिति मे अपने प्राण ही कब तक कायम रह सकते है? अपना आक्रमण चीन का आत्मघात सिद्ध होगा!

७ | चीनी आक्रमण और साहित्यकार

सन् १९५० की बा है फरवरी महीने की, जब दिवगत डा० आइन्स्टाइन ने प्रिन्स्टन के फुल्डहाल के अपने कमरे मे, मेरे इस प्रश्न के उत्तर मे, कि यदि एक राष्ट्र प्रसर-नीति से प्रेरित होकर अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करे और उस आक्रमण मे सहायता के लिए देश के वैज्ञानिको से सहायता का आग्रह करे तो क्या वैज्ञानिको का सहायता देने से इन्कार कर देना उचित और नैतिक होगा। उन्होने कहा था, "निश्चय ! ही" उनका विश्वास था कि वैज्ञानिको का वह आचरण न केवल देशद्रोही होगा बल्कि सर्वथा मानवीय और नैतिक होगा।

पाचवी सदी ईसा पूर्व जब एथेन्स के प्रसिद्ध जनरल आल्किबियदीज ने सिसिली पर आक्रमण किया तब एक ग्रीक नाट्यकार ने नाटक लिखकर उस आक्रमण का विरोध किया, उसे अनैतिक कहा और उस आक्रमण की पराजय ने आक्रमण को हास्यास्पद भी बना दिया।

इनके अतिरिक्त भी साहित्य के इतिहास मे अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाएगे जहा साहित्यकार ने अपनी आवाज़ प्राक्रमण के विरोध मे उठाई है। पता नही, किसी चीनी

साहित्यकार ने पडोसी भारत पर चीन के वर्तमान आक्रमण को अनैतिक कहा है, या नही ? वैसे चीन की जो राष्ट्रीय नीति रही है उसके सन्दर्भ मे ऐसा होना सभव जान नही पडता, और यदि ऐसा हो, अथवा हुआ भी हो, तो जिस मात्रा मे चीन मे वैयक्तिक भावप्रकाश का दमन हुआ है उससे यह सभव नही जान पडता कि बाहरी दुनिया को उसकी गध भी मिले। पिछली जुलाई मे मास्को की 'शाति-काग्रेस' मे जब सोवियत प्रधानमत्री निकिता ख्रुश्चेव ने शाति के पक्ष मे भारत और पडित नेहरू के दो-दो बार नाम लिये और फलस्वरूप जब हाल मे बैठे ससार के सारे प्रतिनिधियो ने हर्ष से रोमाचित हो करतल-ध्वनि की, तब चीनी प्रतिनिधि-मडल ने अत्यन्त सकुचित मनोवृति और उदासीन तटस्थता का परिचय नितान्त नीरवता से दिया। यदि चीनी प्रतिनिधि-मण्डल सर्वदा राजनीतिक रहा होता तो शायद भारतीय और अन्य प्रतिनिधि-मण्डलो के सदस्य-साहित्यकारो मे इतनी गहरी प्रतिक्रिया उससे न हुई होती जितनी इस कारण हुई कि चीनी प्रतिनिधि-मण्डल के नेता प्रसिद्ध उपन्यासकार माओ-तुन थे। एक दिन पहले जब मैं प्रसिद्ध उक्रेनी कवि निकोला बज़ान के दुभाषिये से राहुलजी को इलाज के लिए रूस लाये जाने के सबध मे कवि को एक सूचना भेज रहा था तभी यकायक बगल की ओर नज़र उठी और देखा माओ-तुन कुछ नर्मी से मेरी ओर देख रहे हैं। आखे चार हुई, कुछ मुरव्वत आई, करमर्दन हुआ, पिकिग शाति-काग्रेस के प्रति सकेत हुए जहा हम दोनो ने सास्कृतिक बैठको मे कई दिन साथ काम किया था।

फिर हम दोनो एक-दूसरे का अभिवादन कर कुछ दबे मन से अलग हो गये। कुछ अजब न था कि इस प्रकार जो भाव-भूमि बनी तो आगे कुछ चीन भारत के बीच टूटे स्नेह की भी, सद्भाव की भी बात होती, पर अगले ही दिन ख्रुश्चेव के भाषण के बाद, दोनो मण्डलो मे भीतरी तनाव काफी बढ गया। देखा, जब मुल्कराज आनन्द ने आखे चार होने पर, हाथ बढाया तब तुन ने प्रकट उदासीनता से उसे लिया और पीछे तो उस मण्डल के अहकार का रूप अत्यन्त असह्य हो उठा। भारतीय साहित्यकारो मे से भी सभी ने तुन की उपेक्षा की, साधारण औपचारिकता भी शेप न रही और डा० आनन्द ने सच ही एक यूरोपीय पत्रकार से, जो चीन मे काफी दिनो रह चुके थे, एक प्रसग मे बात करते हुए कहा कि यह बात तब की है जब चीन मुस्कराया ही नही, हसा भी करता था, अब तो वह केवल क्रूर व्यग्य के दायरे मे सास लेता है। निस्सन्देह सकेत उसी शिष्टता की ओर था जिसका मास्को मे हमने चीनी साहित्यकारो के प्रतिनिधि तुन मे दर्शन किया।

प्रकट है कि चीनी साहित्यकार, अकारण हो चाहे सकारण, चीन के इस आक्रमण के पक्ष मे हैं, और ऐसा लगता है कि जो पक्ष मे नही भी है कम से कम वे उसका प्रतिकार नही कर सकते। यदि अन्य राष्ट्रीय और नैतिक कारण प्रत्या-क्रमण के लिए पर्याप्त न हो तो भारतीय साहित्यकारो मे घनी प्रतिक्रिया के लिए क्या चीनी साहित्यकारो का यह रूप ही पर्याप्त नही ? मै समझता हू, चीनी साहित्यकारो का आचरण स्वय भारतीय साहित्यकारो की घोर प्रतिक्रिया का कारण

होना चाहिये ।

पर यह तो हुई आक्रमण के सदर्भ मे साहित्यकार की नैतिक प्रतिक्रिया की बात। अब हम तनिक इस बात पर विचार करे कि भारतीय साहित्यकार को इस सबध मे चीनी-आक्रमण के सकट काल मे, करना क्या चाहिये । भारतीय साहित्यकारो के एक वर्ग की—प्रगतिशील लेखक-वर्ग की—तो सदा से यह मान्यता और दर्शन रहा है कि साहित्य सर्वथा राजनीति-निरपेक्ष नही हो सकता, कि उसका सबध साक्षात् अथवा परोक्ष रूप से जीवन से घना होने के कारण उसमे होनेवाले राजनीतिक परिवर्तनो के अनुकूल ही साहित्यकार की प्रवृत्ति भी परिवर्तित होती जाएगी और कि जो साहित्य-कार जितना ही अधिक जीवन और समाज के प्रति अनुरक्त होगा—चूकि राजनीति जीवन को सदा सर्वत्र उद्वेलित करती, उसे परिवर्तित करती रहती है—राजनीतिक उथल-पुथल से उतना ही घना उसके कृतित्व का सबध होगा । आज का सकट वस्तुत जीवन पर आघात का सकट है—'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्' शरीर, जीवन का पर्याय, सारे धर्मो की साधना का मूल है—जिसके प्रतिकार की भावना अगर साहित्यकार के मानस मे प्रबल न हुई, उसके कृतित्व मे लेखनी के माध्यम से न उतरी, तो निश्चय ही उस जीवन की असाधरण क्षति हो जायेगी जो स्वय उसके अस्तित्व का कारण है । सन्तोष की बात है कि इस दिशा मे न केवल वह प्रगति-शील वर्ग, बल्कि समूचा भारतीय लेखक समुदाय समानमानस, एकाचिती हो उठा है और देश के सारे राज्यो से देश की

जनता के प्रति त्याग और विसर्जन के लिए, प्राणोत्सर्ग तक के लिए उसने आवाज उठाई है। प्रकट है कि इस सकट के प्रतिकार का प्रयत्न हो रहा है।

देश के सकट काल मे शत्रु के प्रतिक्रिया और इस प्रतिक्रिया के परिणाम मे साहित्यिक उपक्रम स्वाभाविक होना चाहिये, और स्वाभाविक होता भी है। पर कुछ ऐसे भी लोग, सभव है, देश मे हो, शायद है भी, जो सकटकाल तक की इस दृष्टि को 'रेजिमेन्टेशन' कहकर वैयक्तिक स्वाधीनता की दुहाई देते है। पर मै समझता हू, यह बाहर से 'रेजिमेन्टेशन' नही भीतर से साहित्यकार की उस रुचि का प्रमाण उपस्थित करता है जो सामाजिक प्रक्रिया से विरक्त है। जिसमे समाज के प्रति जितनी ही अनुरक्ति होगी, जितनी ही सामाजिक दु ख-सुख के प्रति उसकी एकरसता होगी, उतनी ही सकटो से उसकी रक्षा के लिए, उसके दु ख-सुख से गहरी सहानुभूति के कारण, उसमे प्रतिक्रिया भी प्रबल होगी। वैयक्तिक सदर्भ मे भी इसे यह समझकर स्वीकार करना चाहिये कि समाज की रक्षा ही व्यक्ति की रक्षा है, यह रक्षा दोनो के जीवन की है। यदि कोई साहित्यकार सोचे कि एक विशेष दिशा मे उसके भावो का सक्रमण उससे भिन्न (राष्ट्रीय) बाह्य सत्ता के निर्देश से हो रहा है, जैसा कि उसकी दृष्टि मे होना नही चाहिये, तो उसका उत्तर मात्र यह है—चूकि उसकी दृष्टि समाज के सकट को समझ उसकी रक्षा के अनुकूल उपक्रम नही करती, निश्चय समाज के विनाश की सभावना, स्वय उसके निवाश को भी सभव करती है, उन्ही कारणो

से जो उसके नागरिक होने के नाते उसके दैहिक अस्तित्व को कायम रखने में सहायक होते है, अब उसकी समाज के प्रति उदासीन दृष्टि के फलस्वरूप उस दिशा मे साहित्य-निर्माण के लिए उसे प्रेरित कर रही है । यह निस्सन्देह सत्य है कि पर-प्रेरित और आत्म-प्रेरित साहित्य मे अन्तर होगा । पर क्या उस आत्मबोघ का ही निर्माण साहित्यकार के मानस मे नही किया जा सकता जिससे यह आत्म को परात्म से अभिन्न कर एकागी हीनयान की प्रवृति छोड, बह्‌वगी-सर्वागी महायान के प्रति प्रवृत्त हो ? व्यक्ति का सबध वैयक्तिक हो सकता है, वह सबध परस्पर रागद्वेष का जनक भी हो सकता है, पर समाज के प्रति आचरण तो साहित्यकार का व्यक्तिव्यजक न होकर यदि समाजव्यजक हो तभी वह दोनो के लिए कल्याणकर हो सकता है—समाज के लिए भी, समाज के अभिन्न व्यक्ति के लिए भी ।

और जो आत्म-प्रेरण की प्रतीक्षा मे, राष्ट्र और समाज के सकटकाल मे भी चुप बैठा रहेगा वह निश्चय अपनी वैयक्तिक चेतना का—जिसे वह अज्ञान के कारण व्यक्ति की स्वतन्त्रता मानता है—प्रसारक नही, घातक होगा और केवल यह प्रकट करेगा कि उसके भीतर अपने से भिन्न और परे की स्थिति के प्रति विवेक नही है, सामाजिक चेतना नही है, देश के प्रति वह नितान्त उदासीन है, कभी उस अभागे के मन मे राष्ट्र के सकट का दु ख नही व्यापा ।

कहा गया है कि इस प्रकार जो साहित्य सृजन होगा वह स्थायी न होगा । सभव है यह दृष्टि एकाश मे सही हो, यद्यपि

हाल चीनी आक्रमण के सम्बन्ध मे जो लिखा गया है—और लिखा काफी गया है गो इतना काफी नही जितना चाहिए था—उसमे अनेक कृतिया नगण्य नही कहला सकती। वस्तुत यदि सकट की भावना से प्रेरित साहित्यकार इस प्रकार का साहित्य निर्मित नही कर पाता जिसे उच्चस्तरीय कहा जा सके तो निश्चय आवश्यक परिमाण की सामाजिक निष्ठा, एकाग्रता और एकानुभूति की स्वल्पता ही उसका कारण होगी। साहित्यकार को राष्ट्रनिष्ठ, समाजनिष्ठ प्रवृति से अपने मानस को भरना होगा, तभी राष्ट्र और समाज पर की हुई चोट अथवा डाले हुए सकट को वह अपने ऊपर पडी चोट या सकट समझेगा और तभी घनी अनुभूति और भाव से प्रेरित हो वह अपनी नई समाजप्रवण आत्म-रति मे साहित्यिक कालजयी क्लासिको का—इस सीमित सदर्भ मे भी—निर्माण कर सकेगा।

फिर यदि सकट के सदर्भ मे लिखा साहित्य कालजयी नही भी बन पाया, सकट मे पडे जीवन की रक्षा मे अस्थायी साधनो से भी सहायक हो सका, तो क्या यह स्थायी साहित्य की उत्प्रेरक शान्ति की रक्षा नही हुई ? और क्या यह प्रक्रिया कुछ कम महत्त्व की होगी ? राष्ट्र और समाज की रक्षा के प्रति जो जागरूक होता है वह उस दिशा मे उपक्रम करता है जिसमे स्थायित्व के मूलाधार स्थित है और यदि अस्थायी साहित्य द्वारा ही हम इस सकटकाल मे सकट के प्रति अपनी सारी शक्तिया साहित्य की पुकार द्वारा एकत्र एव सगठित कर सके तो क्या इतना ही पर्याप्त नही है ? क्या इसके द्वारा,

अस्थायी साहित्य के द्वारा ही, युद्ध को हटा शान्ति की स्थापना यदि हम कर सके तो क्या हम उस परिस्थिति का निर्माण न कर सकेंगे जिसमे युद्ध तज दिया जाता है, शान्ति की प्रतिष्ठा होनी है, स्वय स्थायी साहित्य पलता है ?

और साहित्यकार का इस सकट का विरोध एकाकी नही सामुदायिक और उससे भी बढकर सामाजिक होगा। देश के विविध साहित्य-वर्गो, साहित्य-दृष्टियो, लेखक-सगठनो को एकत्र हो सर्वथा समानधर्मा होना होगा, क्योकि देश के इस समान सकट को सभी समान रूप से स्वीकार करते है। इस प्रसग मे, कम से कम जब तक यह समान सकट बना है, इसकी अनिवार्य आवश्यकता है कि हम अपने स्थानीय विरोधो को दबा दे और एकमात्र इस सकट के विरुद्ध प्रतिक्रिया को समाज-प्रेरण के रूप मे जगा रखे। हमारे परस्पर के सैद्धान्तिक विरोध हमारी शक्ति को क्षीण करेगे।

वस्तुत आवश्यकता इस बात की है कि न केवल इसी देश मे बल्कि इससे भिन्न ससार के अन्य सारे देशो मे भी हम अपनी आवाज उठाकर चीनी आक्रमण की अनैतिकता के प्रति साहित्यकारो का सगठन करे। उचित तो यह है कि भारतीय लेखक किसी केन्द्रीय स्थान मे एकत्र होकर चीनी आक्रमण के प्रतिरोध मे शान्तिप्रवण घोषणा करें और युद्धविरोधी वह घोपणा न केवल अफ्रीका और एशिया के साहित्यकारो के प्रति हो बल्कि ससार के प्रत्येक देश के लेखक-वर्ग के प्रति—स्वय चीनी लेखको के प्रति भी—और यह अपील अथवा घोषणा अन्तर्जातीय स्वरूप धारण करे। जिस प्रकार

राजनीतिक शिष्टमण्डलो द्वारा विदेशो मे इस आक्रमण की अनैतिकता की घोषणा होनी आवश्यक है उसी प्रकार लेखको से सम्बन्ध स्थापित कर शान्तिप्रिय देशो के ऊपर निरकुश आक्रमण की निदा होनी चाहिए। जब भारतीय लेखको की आवाज पृथ्वी के सभी देशो मे गूंजेगी तभी भारतीय लेखक-वर्ग की भाव-चेतना की रक्षा होगी और शाति के विनाश की प्रक्रिया का प्रतिरोध होगा।

कश्मीर तथा पाकिस्ता

८ | कश्मीर पर एक नज़र

कश्मीर की समस्या आज भारत और पाकिस्तान
के मामने है । उसके पुराने और नये इतिहाम पर एक
डाल लेना नामुनासिब न होगा । उसके प्राचीन इतिहा
पता कश्मीरी-पडित कवि कल्हण की 'राजतरगिणी' से
है । 'राजतरगिणी' के उपसहार के रूप मे जोनराज ने 'ि
राजतरगिणी' लिखी । इन दोनो इतिहासो और समक
कुछ मुस्लिम 'तवारीखो' के आधार पर कश्मीर का
१३३९ ई० तक का इतिहास स्पष्ट प्रस्तुत किया जा
है । उस साल शाह मीर नाम के एक विजेता ने कश्मीर
शम्सुद्दीन नाम से उस देश पर अपनी हुकूमत शुरू की ।
कश्मीर छोटा था, प्राय सिन्ध और झेलम की उपरली
तक ही सीमित । आज उसकी हदे पजाब से पामीर
तिब्बत से चित्राल-यारखून तक फैली हैं ।

वैमे तो कल्हण ने पुराणो आदि के आधार पर क
के इतिहास का ब्यौरा प्रागैतिहासिक काल से दिया
प्रमाणत उसका सही इतिहास सातवी-आठवी सदी ईस
ही हमे उपलब्ध है । कश्मीर के ऐतिहासिक रगमच पर

राजकुलो ने प्राचीन काल मे अपना 'पार्ट' खेला है उनमे प्रधान 'कर्कोटक', 'उत्पल' और 'लोहर' रहे है। पर ऐतिहासिक रूप से भी केवल कर्कोटको से ही उस सुन्दर भूखण्ड की कहानी नही शुरू होती। एक बार वह ख्यातनामा अशोक के अधिकार मे भी रह चुका था। कहते है ईसा से पहले तीसरी सदी मे अशोक ने उस सुन्दर प्रदेश को बौद्ध सघ को दान कर दिया था। श्रीनगर के निर्माण का श्रेय भी अशोक को ही दिया जाता है। अशोक के बाद जब उसका साम्राज्य उसके पुत्र-पौत्रो मे बटा तो कश्मीर जलौक के हिस्से पडा। नही कहा जा सकता कि जलौक और उसके वारिसो के हाथ मे कश्मीर कब तक रहा, पर कुछ अजब नही कि सिन्ध और पजाब पर ग्रीको का शासन दूसरी-पहली सदी ईसवी पूर्व मे स्थापित हो जाने से कश्मीर भी बाख्त्री (बल्ख) के ग्रीक राजघराने के अधिकार मे आ गया हो। फिर जब शको-पहलवो के हाथ से किदार कुषाणो ने शक्ति छीनी तो निस्सन्देह कश्मीर की घाटी कफ्स आदि के अधिकार मे आई। कनिष्क ने तो श्रीनगर के पास ही बौद्धो की प्रसिद्ध चौथी 'सगीति' का अधिवेशन किया जिसकी अध्यक्षता सुपर्श्व ने की और जहा वसुमित्र, अश्वघोष आदि ने अपने दार्शनिक प्रवचनो द्वारा बौद्ध-दर्शन का विस्तार किया। सभवत उसी पहली सदी ईसवी के कुषाण-शासन से महायान का प्रवर्तक नागार्जुन भी सबधित था, शायद चिकित्सा-शास्त्र का महान पण्डित चरक भी। कश्मीर का राज कुषाणवशीय हुविष्क ने भी कुछ काल भोगा। फिर एक पीढी के लिए उस पर छठी सदी ईसवी मे हूणो की भी सत्ता जमी,

जब मध्यदेश से मार खाकर तोरमाण कश्मोर पहुचा और धोखे से उसने वहा की गद्दी हडप ली। कल्हण ने अपनी 'राजतरगिणी' मे उसकी अमानुषिकता का विशद वर्णन किया है। उसकी क्रूरता इतिहास-प्रसिद्ध है। पर्वत की चोटियो से हाथियो को नीचे गिराकर उनके भयान्वित चिघाडो से वह विशेष सुख पाता था। सातवी सदी मे कर्कोटक आये। इस प्रकार कश्मीर न केवल भारत का उन्नतांश बना रहा बल्कि पटना और पजाब के दार्शनिक उसका ज्ञान-कलेवर सदा सवारते रहे।

उस सदी के शुरू मे गोनन्दो से कश्मीर छीनकर दुर्लभवर्धन ने कर्कोटक वश की नीव डाली। वह हर्षवर्धन का समकालीन था और उसने हर्ष को बुद्ध का दात भेट किया। उस काल कश्मीर के ही शासन मे केतास, हजारा, पुछ और राजोरी भी थे। उस राजकुल का सबसे महान राजा ललितादित्य मुक्तापीड (ल० ७२४—६० ई०) था। वह राजा दुर्लभक का तीसरा बेटा था और शक्ति से राजदण्ड उसने स्वायत्त किया था। कश्मीर के विजयी राजाओ मे उसका-सा विजेता दूसरा न हुआ। वह कन्नौज के यशोवर्मन् और प्रसिद्ध सस्कृत कवि-नाट्यकार भवभूति का समकालीन था। तब तक कश्मीर अधिकतर चीन के ही अधिकार मे रहा था। मुक्तापीड ने कश्मीर को चीनी हथकडो से मुक्त कर, उसके कुछ इलाके भोट (तिब्बत का एक भाग) आदि भी ले लिये। उसने तुखारिस्तान, दरदिस्तान और पजाब के भाग भी जीते थे, फिर पहाड ही पहाड होता वह गौड मे उतर गया था जिस पर कुछ काल के लिए उसका कब्जा हो गया। ७३३ ई० मे

वह कन्नौज पर चढ दौडा और यशोवर्मन को हराकर उसने वहा अपने नाम के सिक्के चलाये । वह निर्माता भी बडा था और उसके अनेक मन्दिरो मे सूर्य के प्रसिद्ध मार्त्तण्ड-मन्दिर के खडहर आज भी खडे है ।

जयापीड विनयादित्य, मुक्तापीड का पोता, कर्कोटक राजकुल का दूसरा प्रसिद्ध सम्राट था। उसने कन्नौज, नेपाल और गौड पर फिर अधिकार कर, अपने दादा की नीति दुहराई। उसके लालच और जुल्म से प्रजा तबाह हो गई। ८१० ई० मे उसके मरने पर प्रजा को नजात मिली।

उसके बाद के कर्कोटक राजा कमजोर हुए जो तलवार मजबूती से न पकड सके और नवी सदी के बीच उत्पलो ने उनसे कश्मीर का राज छीन लिया। 'कुट्टनीमतम्' के रचयिता दामोदरगुप्त और प्रसिद्ध अलकारशास्त्री उद्भट और भामह जयापीड की सरक्षा मे ही रहे थे।

उत्पलो मे पहला अवन्तिवर्मन हुआ, जो ८५५ ई० मे गद्दी पर बैठा। प्रजा कर्कोटको और सामन्ती डाकुओ से बेहाल हो रही थी। चारो ओर अराजकता फैली हुई थी। खेती बरबाद हो रही थी, मन्दिरो पर डाके पड रहे थे। उसने डामरो की शक्ति तोड दी। डामर देहाती सामन्त थे जिन्होने भयानक लूट-मार देश मे मचा रखी थी। वोन्तपुर उसी अवन्तिवर्मन ने बसाया था। 'ध्वन्यालोक' का प्रतिभाशाली रचयिता आनन्दवर्धन उसी की सभा का पण्डित था। जिसे भारत ने अपना मूर्धन्य रसपडित माना। उसका मत्री सुय्य अपने सार्वजनिक कार्यो से इतिहास मे प्रसिद्ध हो गया है। उसने झेलम की धारा

बदल दी और उससे अनेक नहरें निकालकर उसकी तलेटी से निकले खेतो को सीचा। आज महगी की चोट खाये हमे पढकर कुछ कम सन्तोष नही होता कि किस प्रकार सुय्य के प्रयत्न से कभी २०० दीनारो का एक खरी मिलने वाला चावल केवल ३६ दीनारो मे मिलने लगा था। उसका नाम आज भी शोपुर कस्बे के नाम मे सुरक्षित है।

८८३ ई० मे अवन्तिवर्मन के मरने पर कश्मीर मे भयकर गृह-युद्ध छिड गया। भाई-भाई के खून का प्यासा हो गया। अन्त मे उसका पुत्र शकरवर्मन गद्दी पर बैठा। उसने दूर-दूर तक धावे किये, झेलम और चिनाब के बहाव से गुजरात तक, प्रतीहारो के राज से कागडा तक। पर युद्धो ने उसकी अर्थनीति चौपट कर दी, कोष खाली हो गया। तब उसने मन्दिरो और प्रजा को लूटना शुरू किया। ९०२ ई० मे हजारा के धावे से लौटता वह राह मे मरा। फिर उसका बेटा गोपालवर्मन गद्दी पर बैठा। उसी के शासन काल मे उसके मत्री प्रभाकरदेव ने काबुल से साहिय राजा सामन्तदेव को परास्त कर उसकी साहिय गद्दी पर तोरमाणकमलुक को बिठाया। गोपालवर्मन दो साल बाद ही मर गया और तब से ९३९ तक निरन्तर अराजकता देश मे फैली रही।

इस बार अखाडे मे सेना के दो दल 'तन्त्रिन्' और 'एकाग' थे, जिनके अत्याचारो से प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तभी ९१७–१८ मे कश्मीर मे बालक राजा पार्थ के समय इतिहास-प्रसिद्ध अकाल पडा। पर राजदरबार उससे विमुख था। प्रजा अन्न के अभाव मे तडप-तडप, मर रही थी, पर राजकुल, मत्री

और तन्त्रिन् कल्हण के शब्दो मे, "सचित चावल की राशियो को मनमाने दामो बेच-बेच अनन्त धन इकट्ठा कर रहे थे।" पार्थ का बेटा उन्मत्तावन्ती केवल दो साल के लिए गद्दी पर बैठा पर उन दो सालो मे उसने कश्मीरियो को नरक की याद दिला दी। नाम के ही अनुसार उसके गुण भी थे। उसने जयेन्द्रबिहार मे प्रव्रजित पिता की हत्या कर दी, भाइयो को निराहार रखकर मार डाला। उसके बाद कुछ महीनो मे शासन उसके कुल से छिन गया।

९३९ ई० ब्राह्मणो ने गोपालवर्मन् के मत्री प्रभाकरदेव के पुत्र यशस्कर को राजा चुना। उसके शासन मे शान्ति लौटी। उसके पुत्र सग्राम को मारकर मत्री पर्वगुप्त ने गद्दी हडप ली और एक नये कुल की नीव डाली। इस कुल की सबसे प्रसिद्ध और ससार के इतिहास मे अपना स्थान रखने वाली रानी दिद्दा हुई। वह काबुल के भीमशाही की नातिन और पुछ के लोहर सामन्त सिहराज की पुत्री थी। उसने आधी सदी तक (९५०-१००३ ई०) बडी प्रवीणता से राज किया, पहले राजा क्षेमगुप्त की रानी के रूप मे, फिर अपने पुत्रो के अभिभावक के रूप मे, अन्त मे 'स्वय' गद्दी पर बैठकर। लडाई मे वह मिस्र की उस प्रसिद्ध मामलुक मलका शुजुरुद्दर की तरह सेना का नेतृत्व करती थी जिसने क्रूसेडो के नेता इग्लैड के राजा 'सिह-हृदय' रिचर्ड को बन्दी कर लिया था। परन्तु शासन मे वह उससे कही दक्ष थी। डामरो और ब्राह्मणो की दुश्मनी के बावजूद उसने कश्मीर की राजनीति मे अपना साका चलाया। तुग नामक खस की वह प्रेयसी थी। वही तुग कुछ काल बाद

तक कश्मीर की राजनीति पर छाया रहा और महमूद गजनवी के विरुद्ध रण मे भी गया। दिद्दा ने मरते-मरते कश्मीर की गद्दी अपने पिता के लोहर कुल को सौप दी। अपने भतीजे सग्रामराज को गद्दी पर बिठा उसने कश्मीर मे लोहर राजवश की नीव डाली।

लोहरो के आरभ-काल मे तो तुग ही सर्वेसर्वा था। १०१४ ई० मे जब त्रिलोचनपाल साहिय ने महमूद गजनवी से लडने के लिए हिन्दू राजाओ को आमन्त्रित किया तब कश्मीर की ओर से तुग भी लडने गया। महमूद ने सात वर्ष बाद कश्मीर जीतने की भी कोशिश की, पर लोहकोट का घेरा डालकर भी उसे न जीत सकने से निराश होकर वह पजाब लौट गया। कश्मीर उस तबाही से तो बच गया, पर घर की तबाही उसे ले डूबी। डामरो के अत्याचार से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। खून-खच्चर आये दिन का राज हो गया। कामुकता, षड्यन्त्र, हत्या महलो का शृगार बनी। १०८९ ई० मे हर्ष नाम का होनहार राजा गद्दी पर बैठा। लगा, दशा बदलेगी, पर वह भी अत्यन्त क्रूर और कामी निकला। सेना मे उसने तुर्क जनरल नियुक्त किये और मन्दिरो को अपवित्र करने और उन्हे तथा प्रजा को लूटने की अद्भुत योजनाए बनाईं। फिर देश डामरो की लूटमार का शिकार हो गया। और अन्त मे १३३९ ई० मे शाह मीर ने 'श्री सम्स दीन' (शम्सुद्दीन) नाम से कश्मीर पर मुस्लिम शासन स्थापित किया। राजभाषा फिर भी कश्मीर की, ब्राह्मणो के प्रभुत्व के साथ, सस्कृत ही बनी रही। हिन्दू शासन के साथ कश्मीर के इतिहास का पूर्वार्द्ध

समाप्त होता है ।

शुरू के मुस्लिम राजाओ ने काश्मीर के शासन मे गजब की सहिष्णुता का परिचय दिया । प्राय वैसा ही जैसा ६०० वर्ष पहले सिन्ध मे अरबो ने दिया था। उन्होने कश्मीर की समूची सस्कृति अछूती रखी, बल्कि स्वय वे उस सस्कृति के अगुआ बने । सस्कृत को उन्होने अपनी राजभाषा बनाया। उसी मे सिक्को पर लेख लिखवाए, उसी मे अपनी प्रशस्तिया लिखवाई । ब्राह्मण न केवल वहा लगान की वसूली के लिए नियुक्त थे, वरन् सारा शासन ही उन्ही के सहकार से चलता था । वही मत्री थे, वही शासक । बहुत काल पीछे तक उनका यह दबदबा कश्मीर मे बना रहा। जैनुल आबीदीन का प्रजा-वत्सल शासन आज भी कश्मीरियो को रामराज्य की तरह याद है ।

कश्मार की ऊचाइयो से उतरकर ब्रिटिश भारत या रजवाडो मे अपना भाग्य परखने की कश्मीरी प्रवृत्ति केवल आज या हाल की ही नही, पुरानी भी है । प्रसिद्ध कवि कालिदास, क्षेमेन्द्र आदि ने तो गगा-गोदावरी की घाटियो मे ही रहकर नाम कमाया, यद्यपि स्वय काश्मीर से भारती मुखरित करनेवाले साहित्यिको की कमी न थी । रस और अलकार के क्षेत्र मे जितना साहित्य कश्मीर ने प्रस्तुत किया, भारत के किसी अन्य प्रात ने नही ।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भो धीरे-धीरे कश्मीर का नाम लिया जाने लगा । चीन, ईरान, काबुल आदि की प्रसरनीति का केन्द्र तो वह अनेक बार रहा ही था, अन्य मुल्को की राजनीति सवारने मे भी उसके लाडलो ने कुछ कम प्रयत्न न किये । यहा

उदाहरण के लिए केवल एक तिलक की ओर सकेत कर देना काफी होगा। अभी रानी दिद्दा को मरे कुछ ही दिन हुए थे, उसका प्रेमी तुग अभी जिन्दा ही था कि नाई का आकर्षक बेटा तिलक कश्मीर से गज़नी जा पहुचा। वह शायद राजा भोज और दिद्दा दोना का ही कनिष्ट समकालीन था और दोनो की सेनाओ को सभवत उसने त्रिलोचनपाल के झडे के नीचे लडते देखा था। उसने गजनी के दरबार को अक्ल और हुनर से जीतना चाहा, जीता। मुसलमान समकालीन इतिहासकारो ने उसकी बेइन्तहा तारीफ लिखी है। वे लिखते है कि "तिलक असाधारण वाचाल, असामान्य सुलेखक—हिन्दी और फारसी दोनो का—था। उसने कूटनीति और धोखाधडी कश्मीर के अनुपम कूटनीतिज्ञो से सीखी थी। वह जादूगर भी था, मोहन वशीकरण जाननेवाला भी, क्योकि सब उसके जादू के मारे थे, जो उससे मिलता उसी का होकर रहता।" कब और कैसे वह ग़ज़नी पहुचा, यह कोई नही जानता, पर यकायक उसका नाम मशहूर हुआ। स्वय महमूद उसका कायल हो गया और उसके प्रधानमत्री ख्वाजा अब्दुर्रज्ज़ाक ने उसे अपना सलाहाकार, दुभाषिया और गुप्त भेदो का सेक्रेटरी नियुक्त कर लिया। महमूद के बेटे खूंख़ार मसूद पर तो वह इस कदर हावी हुआ जो कल्पनातीत है। उसने उसे अपनी हिन्दुस्तानी फौजो का जनरल बना दिया, उसे छत्र और शाही शामियाने का हकदार बनाया। तिलक के फौजी झडो मे भी सोने के पेच लगने लगे, उसके दरवाज़े पर भी नौबत बजने लगी। एक काम उसने गज़ब का किया। नियाल्तिगिन लाहौर का हाकिम था। वह बागी हो

गया। उसने, मना करने पर भी, बनारस पर हमला किया था। पूरब मे कोई मुसलमान विजेता अब तक इतना दूर नही जा सका था, स्वय महमूद तक नही। महमूद ने नियाल्तिगिन को पकडने के लिए सेना पर सेना भेजी, पर उसे मार खाकर लौटना पडा। किसी जनरल की उधर जाने की हिम्मत जब न हुई तब तिलक ने उसे सर करने का बीडा उठाया। सेना लिये वह लाहौर पहुचा और बागी फौजो के पैर उखड गए। नियाल्तिगिन भागा। पर तिलक को तो उसका सिर चाहिए था, महज हार से क्या बनता ? तिलक लडाई केवल तलवार की नही लडता था, उसका इष्ट दाव-पेंच मे था। उसने झट जाटो को साधा और एक लाख चादी के सिक्को के बदले नियाल्तिगिन का सिर उसके खेमे मे आ पहुचा जिसे तीसरे ही दिन तिलक ने महमूद के दस्तरखान पर जा रखा।

गुलाम आए और तुर्क, खिलजी और तुगलक, सैयद और लोधी, पर सिवा जब-तब उधर रुख कर लेने के कोई कश्मार को पूरे तौर पर शासन मे मिला न सका। सूरो ने शायद कुछ प्रयत्न किये पर उसकी सही जीत का सेहरा १५८७ ई० मे अकबर के ही सिर बधना था। मुगलो ने बार-बार अपने पुरखो की जमीन फरगना और वखॉ की घाटी पर कब्ज़ा करना चाहा था, बार-बार उन्हे मुह की खानी पडी थी, पर कश्मीर की खुशनुमा घाटी जो उनको घलुए मे मिली उसने उनकी हार जीत मे बदल दी। क्या प्राकृतिक खूबसूरती, क्या केसर जायफ़ान की खेती, दोनो रूप मे। अकबर से कही बढकर उसका मोह जहागीर और नूरजहा को था। शालीमार

बाग की हरियाली मे बाबर की आत्मा जैसे मदिर जहागीर की काया मे उतर आती और वह सल्तनत की परेशानिया भूल जाता। वही नूरजहा ने गुलाब का इत्र निकाला, वही दोनों प्रेमी हर साल गर्मी के महीने बिताने लगे। शाहजहा स्वय कश्मीर का दीवाना था। हर साल वह भी कश्मीर जाता। वह घाटी औरगजेब की हुकूमत तक बराबर मुगलो के शासन मे बनी रही—तब तक, जब तक दिल्ली की सल्तनत टूक-टूक न हो गई।

कालान्तर मे कश्मीर मे खालसा सरकार की भी हुकूमत कायम हुई। केवल कुछ काल। धीरे-धीरे सारा भारत अग्रेजो के अधिकार मे आ गया। पहले ईस्ट इडिया कम्पनी के अधिकार मे, फिर पार्लमेट के अधिकार मे। एक दिन जब महराजा रणजीतसिह के उत्तराधिकारियो के हाथ से कोहनूर के साथ-साथ सतलज के पूर्ववर्ती प्रान्त निकल गए, अग्रेजो की नजर तब काश्मीर पर पडी। रणजीतसिह के बाद ही पजाब डूबा और साथ ही कराकोरम की चोटिया भी इगलिश चैनल मे उतराने लगी। डोगरो ने तब कश्मीर खरीद लिया और वह खुशनुमा घाटी फिर हिन्दू हुकूमत मे आई जिसकी जनता अत्यन्त बहुमत से तलवार के जोर से बनी मुसलमान थी।

उसके बाद या पहले का इतिहास वस्तुतः इतिहास का नही 'तारीख-नवीसी' का अध्याय है। अब कश्मीर हर्ष, एकागो और डामरो का न था, पर खून-खच्चर के अभाव मे भी कुण्ठा और स्वेच्छाचारिता का जो व्यापार नए कश्मीर मे हुआ वह स्वय कुछ कम न था। डोगरे राजाओ ने विदेशो मे

पानी की तरह ऐश पर रुपया बहाने मे किसी रजवाड को आगे न रहने दिया। प्रजा भूखी-नगी बनी रही, देश का रुपया बाहर के सरायो-बाजारो मे बरसता रहा।

यह सम्भव न था कि यह स्थिति बराबर चलती रहती। भारत ने महात्मा गाधी के नेतृत्व मे आजादी का झण्डा उठाया। उस आजादी की माग की लहर ब्रिटिश भारत के बाहर रियासतो मे बह चली। कश्मीर भी मैदान मे उतरा। वहा भी कुर्बानिया होने लगी, लोग जान पर खेलने लगे। पहले रियासत काग्रेस ने ही अन्यत्र की ही भाति आजादी के नारे बुलन्द किये, फिर उसके सारे राष्ट्रीय कार्य राष्ट्रीय कान्फ्रेस ने अपने हाथ मे ले लिए।

सन् ४७ मे देश आजाद हुआ। देश का बटवारा हो गया। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनो मे इन्सान का खून इन्सान ने बहाया। लोग बरबाद हो गए, उनके घर उजड गए। दुनिया के इतिहास ने आदमी की इतनी बडी आबादी का उखडना नही देखा था। उसी बीच कश्मीर पर हमला हुआ। हमला पाकिस्तानी मदद से कबीलाई पठानो ने 'आजाद कश्मीर' के नाम पर किया जिससे कश्मीर पाकिस्तान मे शामिल हो जाए। पर कश्मीर को पाकिस्तान मे शामिल होना गवारा न था। उसका हित भारत के साथ था। उसने भारत का दामन पकडा। राष्ट्रीय कान्फ्रेस और कश्मीर-नरेश दोनो ने हिन्दुस्तानी सघ को स्वीकार किया। कश्मीर मे जन-सत्ता की सरकार कायम हुई।

उधर लडाई चलती रही। भारत का कश्मीर की रक्षा

करना, अपना अग हो जाने के कारण, अब लाज़मी था। भारतीय सेनाए कश्मीर की ऊचाइयो पर चढ गईं। पाकिस्तान जाहिरा इन्कार करता भी मोर्चे पर लडता रहा। पठान उत्तर-पश्चिम के कश्मीरी गावो को पाकिस्तानी सेना की सहायता से लूटते-जलाते रहे। लोगो का कत्ल करते रहे, औरतो की अस्मत लूटते रहे। और उधर की सारी जनता मुसलमान थी! पर उस मोर्चे पर, कश्मीर की उस लडाई मे सभी एक-राय थे—कश्मीरी जनता और सरकार, भारतीय जनता और सरकार, काग्रेसी, हिन्दूसभाई, कम्यूनिस्ट, समाजवादी, सभी। पाकिस्तान वह लडाई हारकर झुझला उठा। उसे अपना हमला स्वीकार कर झूठ निगल जाना पडा। लडाई रुक गई। भारत ने मामला सयुक्त-राष्ट्र-सघ के सामने रख दिया था, सो वहा से सरहद की सभाल के लिए एक जत्था आ पहुचा, निमित्ज़ जिसका अध्यक्ष था। बात वही की वही रह गई। कोई हल न हुआ। कश्मीर मे सविधान-समिति बनी और उसी के लिए सविधान द्वारा तब तक वहा शासन होता रहा जब तक कश्मीरी जनता ने अपने चुनाव द्वारा भारत का सघ राज्य स्वीकार न कर किया। उसकी सरक्षा की जिम्मेदार भारत की सरकार है, भीतरी हुकूमत की खुद कश्मीरी सरकार अन्य भारतीय राज्यो की ही तरह।

पाकिस्तान ने इस बीच कुछ पैतरेबाजी शुरू की, उसके अखबारो ने 'जिहाद' का हल्ला बोला। हिन्दुस्तान चुपचाप उसे सुनता रहा। कश्मीर के मस्ले को इधर शेख अब्दुल्ला की वक्तृताओ और कुछ स्थानीय तथा भारतीय दलो की

जल्दबाजी ने और उलझा दिया। जनसघ आदि ने सत्याग्रह शुरू किया, कश्मीर मे सत्याग्रहियो के जत्थे जाने और जेल मे ठूसे जाने लगे। तभी श्यामाप्रसाद मुखर्जी कश्मीर सरकार के हुक्म की उपेक्षा कर कश्मीर पहुचे और पकड लिये गए। जेल मे ही उनकी मृत्यु हुई।

इसी बीच कश्मीर राजनीति मे एक नई गतिविधि का भडाफोड हुआ। शेख अब्दुल्ला स्वतन्त्र कश्मीर का स्वप्न देखने लगे थे और भारत, प नेहरू और कश्मीर सबके खिलाफ बेवफाई पर आमादा हो गए थे। पता लगते ही सदरे-रियासत श्री करणसिह ने मत्रिमण्डल बर्खास्त कर, उन्हे गिरफ्तार कर लिया। अपने मत्रिमण्डल मे अल्पमत होते भी शेख साहब जो स्वेच्छा-चारिता करते रहे थे, उसका राज अब खुला। बख्शी गुलाम मुहम्मद ने सदरे-रियासत के निमत्रण पर अपना मत्रि-मण्डल बनाया और राष्ट्रीय काफ्रेस और सविधान समिति ने एकमत होकर उन्हे स्वीकार किया। सदा की ही भाति आज भी कश्मीर और भारत एक है।

९ | भारत की अमरावती कश्मीर

ध्रुव से ध्रुव तक की पृथ्वी के प्रसार मे प्रकृति ने जहाँ-तहा अपने विशेष आवास के लिए सौन्दर्यस्थल बनाए है। कश्मीर उसके उसी आवास का अभिराम क्रीडास्थल है। पीर पजाल और कराकोरम से घिरी सिन्ध, झेलम और चिनाव की धाराओ से सिचित कश्मीर की घाटी भारत की अमरावती है, उसके देवताओ का विश्रामागार, उसके कवियो का उद्गम, जिसके कुसुमनिचय का, केसर के वैभव का, भौगोलिक सुषमा का बखान करते वे कभी थके नही। बरनिये और देज़ीदेरी फोर्स्टर और विन्ये, स्टाइन और ग्रियर्सन, बार्नेट और टेम्पुल की वह स्तुत्य भूमि अपनी सुषमा की सम्पदा मे कितनी कमनीय है, यह कहना न होगा। साहित्यकार और भावातुर यात्री सदियो से रीझ-रीझ उसके लालारुखी बाँकपन पर न्योछावर होते रहे है।

कैसा है यह देश ? पीर पजाल की किसी ऊचाई से नीचे नजर डालिए, लालेश्वरी और नन्द ऋषि की वह घाटी हजारो फुट नीचे से सहसा उठकर आँखो मे समा जायेगी। उधर वे पीर पजाल की चोटिया है, कोन्सर नाग, भाताकोटि और रोमेश थोग जिसे आर्थर नीव ने अपने आरोहण का सफल

लक्ष्य बना 'सनसेट पीक' नाम दिया,—अस्ताचल की चोटी। सही, उदयाचल से उठकर बालारुण जब आकाश की मूर्धा पर मध्याह्न मे प्रखर मरीचिमाली बन त्रिविक्रम के एश्वर्य से गगन लाँघ अस्ताचल की ओट होता है, तब थोग पर्वत की चोटी पर सोना बरस पडता है, और तब अन्धकार का प्रबल अहेरी अपने विश्राम की ओर जाते हुए भी प्रकाश के कोटि-कोटि तीर तिमिर पर छोड चलता है।

उधर उत्तर पजाल पर्वतमाला का वह तोसा मैदान, आँखो को बरबस खीच लेता है। मैदान, घास से ढका, जिसके विस्तार पर गडरिये अपने ढोर लिये विचरा करते है। पर मैदान से आप यह न समझे कि वह कश्मीर की घाटी का फैलाव है। ना, उसकी ऊँचाई चौदह हजार फुट से कम नही जो सर्दियो मे बर्फ की परतो से ढक जाया करती है और जिसके निकटवर्ती देवदारु के वृक्षो की डालियो से स्फटिक की सुइयो की शक्ल की बर्फ लटक जाती है, जब उनसे टपकती पानी की बूदें, घनी शीत और पाला की मारी गिरते-गिरते सहसा जम जाती है।

उत्तर-पश्चिम, उत्तर से भी अधिक पश्चिम, वह काज़ी नाग की शृखला है, माटखोरो की निवास-भूमि, बारह हजार फुट से भी अधिक ऊची, अपना हिमधवल मस्तक उठाये जिसकी ढलान देवदारुओ के वनो से ढकी है। और वह नगा पर्वत है, २६ हजार फुट से कही अधिक ऊचा, घाटी की इस दिशा का अदम्य प्रहरी।

उधर दूर कराकोरम की गगनचुम्बी पर्वत-माला है,

मुस्ताग, जिसकी अनेक चोटिया २५ हजार फुट से भी ऊपर उठ जाती है। उसी शृखला मे जगतविख्यात वह हिमशिखर है, हिमालय की एवरेस्ट के बाद सबसे ऊची चोटी, जो अपने २८ हजार फुट से कही ऊँचे टिकासन से जैसे आकाश को टेके हुए है।

मुस्ताग का वह ऐश्वर्य अगर तनिक दब जाता है तो मात्र उस हरमुख शिखर से ही, जिसकी १७ हजार फुट की ऊँचाई से कही ऊँची उसके देवत्व की महिमा है जिसका रससिक्त वर्णन कालिदास ने हेमकूट के नाम से किया है। यह कुछ अकारण नही कि कश्मीरी जनविश्वास उसकी पन्ना सदृश दीप्ति को साप-काटे की दवा मानता है। हर के सयोग से निश्चय फणी भुजग भी उस औढर दानी भोलानाथ के कृपापात्रो का अनर्थ नही कर सकता। कश्मीरियो के श्रद्धेय उस हरमुख के दक्षिण महादेव पर्वत का शिखर स्वय कुछ कम श्रद्धेय नही और ग्रीष्म की सुषमा मे तो उस पर चढनेवाले यात्रियो की अटूट परम्परा बन जाती है।

कश्मीर को ललित घाटी की दक्षिण दिशा मे अमरनाथ का हिमपुज खडा है जिसका कुसुमसचय अपनी अभिराम विभिन्नता मे सानी नही रखता। प० नेहरू ने अपनी आत्मकथा मे इसी अमरनाथ का आकर्षक उल्लेख किया है जो भारत के भाल की भाँति हमारे देश का एक सिरा बनाता है, जैसे उसका दूसरा सिरा सागरसलग्न 'कुमारी' बनाती है। उसी शृखला मे कोलाहोइ का शिखर अमरनाथ से भी ऊँचा है जिसकी कोणाकृति पर जब सुबह का सूरज चमक उठता है

तब प्रतिबिम्बित दर्पण की भाति उसकी चोटी पर नजर नही ठहर पाती ।

हिमाचल की गरिम गिरिमाला अपनी गोद मे डाल प्रकृति की जिस क्रीडाभूमि की रक्षा करती है उस कश्मीरी घाटी का कलेवर कमलदहो से भरपूर है । घाटी की मीठे जल की झीलो को प्राकृतिक सुषमा का प्रेमी कौन नही जानता ? वूलर, डल, मानसबल । एशिया की सबसे बडी मीठे पानी की झील वूलर घाटी के उत्तर-पूरब अपने विस्तार मे अनुवर्ती गिरि शिखरो को अभिराम प्रतिबिम्बित करती है । नीचे श्रीनगर से लगा डल का विस्तार है, पर्वत-श्रेणी के चरण चूमता । परवर्ती गिरिमाला प्रतिबिम्बित उसके जल को कोई अग्रभूमि मे खडे तरुओ की झुरमुट से झाक कर देखे । गर्मियो मे उसका जल लगर डाले नौनिवासो की कतारो और छिटपुट विहरते शिकारो से ढक चलता है, जब ससार के घुमक्कड अपनी तीखी परख से उस घाटी के सौन्दर्य को प्रत्यक्ष ऑकते है, अथक भोगते है । और उधर वह मानसबल है, घाटी की सबसे गहरी झील, जिसका हरिताभ नीला जल कितना कमनीय है, यह उसे देखनेवाला आखो का धनी ही समझ सकता है ।

यह तो हुई घाटी की निचली झीलो की बात, ऊपर पर्वती ऊँचाई की तहो मे बिखरी, प्रकृति की कामभूमियो-सी नेत्रपथ से दुरी भी कुछ झीले है जिन्हे न देख पानेवाला यात्री कश्मीर से कचोटते मन से लौटता है । हरमुख पहाडो से गग-बल, लूल गूल और सर्बल है, जो १२ हजार फुट से भी ऊँची

भूमि पर फैली है।

पीर पजाल के दक्खिन-पूरब वह कोन्सरनाग है, करीब १३ हजार फुट ऊँचा, गिरि-शृखला की तीन चोटियो से घिरा, जिसे गलते हिम की अटूट धारा सदा भरती रहती है। यही कोन्सरनाग शायद उस झेलम का उद्गम है जो घाटी को घेर-घेर, अपनी प्रकृत दिशा से लौट-लौट, जैसे उसे छोडने के डर से सहमी बहती है। उधर लिड्डर घाटी, कोलहोई और शेषनाग के ग्लेशियर है, हिमभूमि, जिनकी बर्फ की गली धाराएँ गर्मियो मे अपने शीतल जल से घाटी के निवासियो को अभितृप्त करती है। अलपत्थर-अफरवत का जमा जल प्रसार खिलनमर्ग के ऊपर है जिसके रूखे बहिरग से चोट खा यात्रियो के दल हरवान और शालीमार की धाराओ के तीर ही सेते है जिनका जल अमरनाथ के तारसर का वरदान है। यही जल श्रीनगर की प्यास मिटाता है।

घाटी की जमीन अपने विविध ठहरे अथवा जल मे बहते धान के खेतो के अनुवर्ती उन चीडो, चिनारो और सफेदो के फैले वन से ढकी है जिनका विस्तार आमूदरिया की बदख्शा और फरगना की याद यात्रियो मे ताजे कर देते हैं। फिर भूमध्यसागर-वर्ती अनेकानेक तरुदल जहाँ-तहाँ सहसा आँखो मे उठ आते है जिनके फलो से अघाकर उनके शेष वैभव को कश्मीरी भारत की ओर सरका देते है। बादाम और पिस्ता, अखरोट और नाख, नाशपाती और चेरी, अगूर और दाख अमित मात्रा मे पेडो से झरते है जिनके यश को अगर कोई वस्तु मलिन कर सकती है तो वह कश्मीर मे ही बुनी उन

शालो की परम्परा है, जिसने दीर्घ काल तक ससार के राजाओ का मण्डन किया है और जिनमे से अनेक का विस्तार असामान्य होकर भी कभी आदमी की बधी मुट्ठी मे समा सकता था।

इसी घाटी की कमनीयता ने गायक कवियो के मन को मदिर कर दिया था और उन्होने कितने ही ललित काव्य उसकी सुषमा से प्रभावित लिख डाले थे। भर्तृमेन्ठ और रत्नाकर, शिवस्वामी और क्षेमेन्द्र, सोमेन्द्र और सोमदेव, मखक और बिल्हण, जल्हण और जोनराज ने उन्मद हो-हो कश्मीर की इस घाटी के अन्तरग-बहिरग से अपनी कृतिया भरी-पुरी थी। इसी की भूमि ने बुलबुल शाह और शाह हमादान को रिझा लिया था, जिनकी सूफी आवाज इसके गावो-नगरो मे गूज उठी थी। इसी भूमि पर शाह नूरुद्दीन ने अपने नवस्वीकृत नन्द नाम से 'ऋषियो' की वह परम्परा कायम की जिनके 'वाक्' कश्मीरी लोक-साहित्य की आवाज बन गए है। उसी 'वाक्' की धनी गायिका, इस नन्द ऋषि की समसामयिकी, वह कश्मीर की मीरा लाल देद (लालेश्वरी) थी जिसके मदिर गायन के वातावरण मे कश्मीरी आज भी सास लेता है, जिसके गीत आज भी वह अनायास गुनगुना लेता है। रूपभवानी और जमन देद भी उसी परम्परा की रहस्यमयी साधिकाएँ थी।

पर उस परम्परा से भिन्न उन नारियो की परम्परा भी कुछ कम न थी जिनकी शक्ति ने पुरुष के पौरुष को राजनीति मे चुनौती दी। और स्वय कश्मीर के सिहासन पर

बैठ कश्मीर का जिन्होने सफल शासन किया—उन यशोमती, सुगन्धा, दिद्दा, कूटा की।

और यह परम्परा भारत के पीर पजाल के पीछे फैले तन का एकाग है—उसका उत्तमाग, प्रकृति का सवारा अनुपम मुखमण्डल। जभी तो उसके अन्तर से उठ-उठ कवियो ने समूची भारतीय साहित्य भारती को मुखर किया और उन कवियो के अभिमत मार्ग को अपने सहृदय ललित विज्ञान से जिन्होने प्रशस्त किया वे थे कश्मीर के ही—भामह और वामन, उद्भट और मम्मट, क्षेमेन्द्र और कुन्तक, आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त और रुय्यक।

वही कश्मीर जैसे सदा से अखण्ड भारतीय सस्कृति का अग रहा है, आज अनायास भारत का राजनीतिक अग भी बन गया है जिसकी विधान सभा ने अपने निर्वाचनो द्वारा बार-बार समूचे भारत से अपनी अभिन्न एकता घोषित की है। इसी कारण पाकिस्तान की दुर्विनीति और आक्रमण तथा चोन की प्रसरनोति के विरुद्ध कश्मोरी, भारत के कोने-कोने से कश्मीर पहुचे सैनिको के रक्त मे अपना रक्त डाल, उन विदेशी अभियानियो से मोर्चों पर जूझते रहे है। भारतोय अखण्डता और नवसोमाओ के प्रसारक कश्मीरी कालिदास नागपुर के निकट के रामटेक से 'मेघदूत' के मधुर द्रुत-विलम्बितो मे कश्मोर के उस स्वदेश को यक्ष की प्रेमविह्वल कातरता से क्यो न पुकार उठे!

१० | केसरिया काश्मीर

कश्मीर से अभी लौटा हूँ। सप्ताह भी नही हुआ। कुल छ दिन हुए।

तीन दिन जाना, तीन दिन आना, मुसीबत की राह, पर ऐसी, जिसके पहले सिरे पर वह बहिश्त था जिसकी जानकारी खूबसूरती और कला के पारखी मुगलो को थी, जो कभी पीर-पजाल की सफेद बर्फीली ऊँचाइयो को लाँघ गये थे।

घर मे कश्मीर की चर्चा हुई। बहन ने लिखा—पता नही कश्मीर पर क्या गुजरे, समझौते की बाते चलने लगी है। सही, समझौते की बाते चलने लगी है, कश्मीर पर जाने क्या गुजरे! पर वैसे गुजर तो वही पायेगा जो हम गुजर जाने देंगे—और विचारो का एक ताँता बँध गया। फिर हुआ, कि चलूँ, प्यारे काश्मीर को देख आऊँ, फिर एक बार, चाहे इसलिए नही कि जाने उस पर क्या गुजरेगी, इसलिए कि उस शारदा देश मे, उसके बर्फीले साये मे कलम को रोक जरा दम ले लूँ और अकबरी चिनारो के नीचे कुछ दुपहरियाँ गुजार आऊँ। चल ही पडा। बेटी चित्रा और बेटी की बेटी सारिका के साथ, जब आधी रात के देर बाद पठानकोट एक्सप्रैस बनारस से रवाना हुई। रातो-दिन, दिनो-रात, बस की सर्पीली पहाडी चढाइयाँ

और साढे पाँच हजार फुट ऊची 'कुद' के पहाडो की चोटी का वह डाकबगला जिसकी सहरी हवा ने पहली बार जलते मैदानो की याद भुला, लिबास को छेद, जिस्म की गहराइयो को छुआ। हम कश्मीर की खुशनुमा घाटी की ओर फिर सर्पीली चाल से चलने लगे।

बानिहाल का दर्रा खासा ऊचा है। उसके दाहिने पहाडी ऊचाइयो की परिक्रमा करते कभी वह राह जाती थी, आज वही राह जवाहर टनेल की कोई पौने दो मील लम्बी सुरग से पहाडी दीवार को छेद जाती है।

और उस पार कश्मीर है, शारदा का वह देश जिसने एक ओर पामीरो को लाँघ उत्तर की दिशा को ज्ञानराशि लुटाई, दूसरी ओर दक्खिन के भारत को अपनी केसर के साथ साहित्य की अमर-बेलि सौपी। शारदा देश, शीतल, कमनीय। पता नही कश्मीर का नाम शारदा कैसे पडा—शरद् की शीतलता से, वर्षा से प्रसूत उस ऋतु से, जिसकी शीतलता ने विशिष्ट 'सर्दा' फल से कश्मीर को सम्पन्न किया है, अथवा सरस्वती के इस साहित्य-मुखर पर्याय शारदा से। जो भी हो, निस्सदेह शारदा की पल्लविनी लता कश्मीर की भूमि से फैल प्रतान सी अन्तरिम भूतल को ढकती कभी सिन्धु-गगा की घाटी को पार कर दकन के दक्खिन तक जा पहुची थी और उसकी रसवती भारती ने समूचे देश को आप्लावित किया था।

कश्मीर का ही वह यक्ष-कवि था कालिदास जिसने अपना अभिशप्त जीवन रामटेक के पठार पर महीनो बिना क्षिप्रावर्ती उज्जयिनी को दीर्घकालिक आवास बनाया था। प्राय तभी

के कश्मीरी रसवर्षी कवि भर्तृमेण्ठ के प्रबन्ध काव्य से प्रभावित राजा ने भोजपत्रो को ढकने वाली बेठन के नीचे सोने का थाल रख दिया था—काव्य का रस कही बेठन को भेद, चू न पडे !

गुणाढ्य-बिल्हण-जल्हण-कल्हरण-जोनराज—कहानीकारो-काव्यकारो-इतिहासकारो की कश्मीरी परपरा ! रत्नाकर शिवस्वामी, क्षेमेन्द्र, सोमेन्द्र, मखक की, जिन्होने रस की धार से कश्मीर की धरा को सीचा ! रसवादियो, अलकारशास्त्रियो, काव्यसमीक्षको का तो वह शारदा देश सदा ही क्रीडा-भूमि रहा है—भामह, वामन, उद्भट, रुद्रट, मम्मट, रुय्यक, उब्बट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक—काव्यपारखियो की इतनी लम्बी शृखला, किसी देश ने नही सिरजी । और जब इन्होने रस और सौन्दर्य की परख की बुनियाद अपने चिन्तन से डाली तब वह चिन्तन की धारा हिन्दूकुश और पामीरो को लॉघ ईरान और अरब, इटली और स्पेन के विदग्ध आचार्यो के सौन्दर्य-परीक्षण और दर्शन-चिन्तन का आधार बनी ।

उसी कश्मीर की घाटी मे, अशोक के बसाये उसकी राजधानी श्रीनगर मे, कभी के जलौक सेवितर झेलम के तट पर, जहॉ कनिष्क की सरक्षा मे पार्श्व और अश्वघोष ने बौद्ध सगीति का सचालन किया था, खडा हू । और बार-बार वह दर्द उभर पडता है—वह प्रश्नात्मक दर्द—कि विदेशियो ने जिस सभझौते मे इतना रस लिया है वह भारत के लिए कितना हितकर होगा ? क्या वह सचमुच कश्मीर और गगावर्ती भारत के आदिम काल से—गोनदो से भी प्राचीनतर काल से चले

आते घने सम्बन्ध को कायम और सुरक्षित रख सकेगा ?

कश्मीर पहले भी आया था, पर तब यह प्रश्न सामने न था। दो-दो बार कश्मीर आ चुका था। एक बार प्राय तीन साल पहले, जब कागडा के पहाडो मे लेखको का 'वर्कशाप' आयोजित हुआ था और जहाँ से लौटते, पठानकोट पहुचते उस लोभ को सवरण न कर सका था जिसने सदियो पहले मुगलो को अपनी ओर बरबस खीचा था। मैं तब चुपचाप, बगैर किसी पूर्व आयोजन के, काश्मीर की घाटी मे उतर गया था। पर तब पडौसी की पैनी नजर घाटी पर रहते भी समझौते का सवाल सामने न था। कश्मीर तब भी आज की ही तरह भारत का अभिन्न अग बन चुका था और समझौते के दानवी दाढो के दूर बाहर था।

पहली बार जब कश्मीर गया था, दूसरी बार की ही तरह अकेला था, जब खच्चरो की राह गिलगित के दर्रे-पठार से चित्राल के बाजू मे हिन्दूकुश की फैली पर्वतमालाओ को लाँघ गया था, पामीरो से उतरती आमू दरिया की अफगानी घाटी का ओर, शहरमुन्जान से परे, जहाँ बलख से लगी आमूतीरकी केसर की क्यारियाँहैं। केसर की क्यारियाँ तो अनेक है—आमू के तीर, शायद तारीम के तीर भी, निश्चय जम्मू मे ; पर काश्मीर की केसरिया क्यारियाँ न केवल पाम्पुर की गौरव है बल्कि उनकी महक सारे भारतीय साहित्याकाश मे भिन रही है।

पाम्पुर की क्यारियाँ मेरे सामने थी जिनके नालदण्डो पर अभी फूलो का अभाव था—जून मे उनका भाव भला वहाँ

हो भी कैसे सकता, यद्यपि उनकी याद दिलाने के लिए डा० शान्ता शर्मा ने मुझे जम्मू की केसर का फूल भेंट कर दिया था, जिसके रेशे सूखकर अपनी कोठ खोल चुके थे और पराग, छूते ही, जिनसे झड पडता था।

दो साल पहले नागा पहाडियो के ठीक नीचे जुरहाट के चाय-बागानो मे सशक खडा हुआ था। शका तब चीनी आक्रमण की न थी—चाहे रही भी हो, पर हमने हमलावर के दाढो को जब तक चीन्हा न था—शका थी नागाओ के इक्के-दुक्के छिपे धावो की। पर तब उनका खतरा एकाकी था, उन पर किसी की शह अभी नही व्याप पाई थी। और न उन्हे भारत के किसी खतरे का ही गुमान था जिससे उनकी अवसरवादिता पनप सकती।

फिर चीनी धोखे के अगले ही माह नेफा के उतार की ओर जाना पडा—भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग की ओर। उसके पच्छिम काठमाण्डू मे कुछ हा पहले कुछ सप्ताह बिताये थे और उस हिमालय के अटूट प्रसार को गद्गद् आखा निहारा था जो एक ओर नागा-खासी के पहाडो को छूता है, दूसरी ओर कराकोरम और नगा पर्वत के पास हिन्दूकुश को।

उसा कराकोरम और नगा पर्वत की ओर गुलमर्ग के वासन्ती फूलो के मैदान से ऊपर देवदारुओ के जगल पार, उनकी मूर्धा खिलनमर्ग की गीली बर्फ के मैदान मे खडा था अफरवत अलपत्थर की ओर रुख किये। बार-बार अस्सी मील लम्बी पच्चीस मील चौडी कश्मीर की घाटी को पर्वती घेरे मे निहारता, प्रकृति की उस अभिराम सुघराई को सराहता, देख-

देख, सिहर-सिहर निहाल होता।

और अब इस पर पडोसी शत्रुओ को टोने की आख पडी है। एक ने उसकी जमीन पर गलत कब्जा कर मालिकाने सखीपन से उसका हिस्सा हिन्दुस्तान के दुश्मन को सौपने की जुर्रत की है, दूसरे ने उसके लद्दाख को अपने वडप्पन की टेक बनाई है। और उन मित्र-राष्ट्रो ने यह सोचकर कि अन्देशे की यह हालत एशिया के आसमान पर छायी रहे, हिन्दुस्तान को हमलावर पाकिस्तान से समझौता कर लेने की सलाह दी है।

समझौता किन शर्तो पर ? किससे ? अभी हमारे घाव हरे है, उनकी चोट का दर्द हमे भूला नही, न उस शहीद की शहादत की याद ही भूली है जिसके मजार पर आज भी हजारो दीवाने सिजदा करने हर साल जाते है। उस साल मै भी वहाँ गया था, बारामूला के ब्रिगेडियर उस्मान के उस मजार पर, जिसकी शपथ प्रत्येक देशभक्त भारतीय की भारतीयता की शपथ होगी। ब्रिगेडियर उस्मान आजमगढ का लाल था, हमारे बनारस से, बलिया से लगे जिले आजमगढ का, जिसने देश की आचलिकता की हदे तोड समूचे भारत की एकता के लिए बडी जवाँमर्दी से कश्मीर की हिन्दू-मुसलमान सतियो की रक्षा के लिए—सच, सतियो की हिन्दू-मुसलमान जात नही हुआ करती—अपनी जान कुर्बान कर दी थी। उस पाकिस्तानी बदमिजाजी को भला कौन हिन्दुस्तानी भूल सकता है ? जैसे हिन्दुस्तान के ऊपर हुए पुराने हमलो मे मध्य एशियाई लुटेरे कभी झोक दिये जाते थे, वैसे ही कबीलाई पठानो

को गुमराह कर उन्हे कश्मीर की परियो और श्रीनगर के धन का लालच दे पाकिस्तानी जगबाज कश्मीर की घाटी मे उतार लाये थे। गुलमर्ग के हरे-भरे फूलो के मैदान मे खडे लकडी के मकानो को मैने उस हमले के कई साल बाद देखा था जो तब भी अपनी जली काया लिये वहशी इन्सान के काले कारनामो का इजहार कर रहे थे। पठानो को तय करने के लिए कुल पाच मील श्रीनगर की राह बच रही थी, जब हिन्दुस्तान के जवानो ने पासा पलट दिया था और दुश्मन उलटे पाव लौट गये थे।

श्री प्रताप कालेज के पजाबी के प्रोफेसर सरदार सेवासिह राह के उस गॉव के थे जिसने अपनी आड से पठानो के जत्थे आते-जाते देखे थे। उन्होने आखो देखा बयान मुझे सुनाया था। पठानिस्तान के सवाल को दबा देने का जरिया पाकिस्तान के लिए तब शायद कोई और न था।

सरदार सेवासिह की याद और दोस्तो की भी याद दिलाती है। कश्मीरी के प्रसिद्ध कवि नादिम को एक जमाने से जानता था। जैसे ही शिकारे से झेलम लॉघ 'बड' से उतर जवाहरनगर को चला, वे मिल गये थे और सालो बाद मिलने पर भी, एक दूसरे पर भटकती नजर डाल कर भी, हम एक-दूसरे को पहचानने से न चूके थे।

शशि शेखर तोशखानी हरेकृष्ण कौल के साथ पहले भी मिल चुके थे, इत्तफाक से केवल एक बार, उस पिछली रात को जिसकी अगली सुबह कश्मीर के अपने दूसरे प्रवास से मै लौट आया था। उनके मित्र, मेरे भी, रतनलाल शान्त पहली बार

मुझे उस व्याख्यान मे मिले थे जिसका प्रबन्ध श्री चमनलाल सपरू ने किया था और जिसकी सदारत श्री प्रताप कालेज के प्रिंसिपल सैफुद्दीन साहब ने की थी।

झेलम की भगिम धाराओ से जैसे श्रीनगर पोर-पोर बिधा हुआ है। कश्मीर की समूची घाटी पन्ने के रसते सोतो से इच-इच सिच रही है और प्रकृति की इस सुषमा को मानवीय परख ने चारुतर बना दिया है—अफसोस काश्मीर की मानवीयता ने नही, गगा-जमुना की मानवीयता ने, जिसमे सदा कश्मीर को अपना समझा है, सदा उसे अपने माथे की मणि बनाकर रखा है।

देखता हूँ, हाथियो की, घोडो की, पालकियो की उन सुनहरी-रुपहली कतारो को, जब मुगलो का वैभव फरगना के सपनो को भूल पीर पजाल को लाँघ उस खुशनुमा घाटी मे उतर जाता था। उनके प्रशाधक हाथो ने कश्मीर की प्रकृति का सोलह सिगार किया—शालीमार, निशात, चश्माशाही, अछबल, झेलम का निकास वेरीनाग, एक के बाद एक जादू की लकडी से जैसे उनके हाथो उभरते-सवरते आये। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ कश्मीर मे रम गये थे। नूरजहाँ कश्मीरी प्रकृति के देवमन्दिर की अमर पुजारिन बनी और समूची घाटी अकबर के लगाये चिनारो से, सफेदो से उमग उठी। मैदानो मे चिनार सप्तपर्णी छायातरु और राजमार्गो के दोनो ओर पतले छरहरे ऊचे सफेदे जिनके शिखर को पतली-लम्बी छडी की-सी डालियाँ नीडवत् ढक लेती है।

सफेदे ऊचे होकर भी चिनारो के सामने जैसे जनाने लगते

हैं, सही सरो के-से जनाने, जो वस्तुत आज कश्मीर के भी प्रतीक बन गये है। उस कश्मीर की याद, उससे दूर हो, आज सपने की-सी लगती है, फिर याद ऐसी जो उमड-घुमड़ मन मे उठती है, उन मित्रो की ही तरह जो साँझ को अनायास घूमकर, थककर लौटे मेरी सोहबत मे चद लमहे गुजारने चले आते थे।

गोनदो ने जिसे पूजा, करकोटको ने जिसे सवारा, उत्पलो, लोहरो, साहियो ने जिसे शक्ति समडित किया, ललितादित्य ने जिसकी समस्त उत्तरी सीमा पर विजयस्तम्भ निर्मित किए। उस पवित्र भूमि को कौन हाथ लगा सकता है? डलवर्ती वह सौन्दर्यो की परम्परा, एशिया को लामिसाल मीठे पानी की वह झील वूलर जिसमे इठलाकर खोकर झेलम फिर निकल पडती है, अपनी सर्पिल राह ले लेती है, जहाँ शकर वर्मन का पाटन, सूर्य का शोपुर (जहाँ के प्राचीन निवासी यहाँ के कश्मीरी शुद्ध कर अपना नाम शिवपुरी लिखने लगे है!) कनिष्क का कानिष्कपुर, हुविष्क का भुस्कपुर, सस्कृति के पहरुए आज भी जाग रहे है।

कश्मीर-सम्बन्धी भारतीय सकट उसके अमर साहित्यकारो की देवछाया को जैसे घूर रहा हो आज दुश्मन की आँखे झेलम की घाटी पर लगी है, उसकी केसर की क्यारियो पर। पर कश्मीर ने आज केसर तन पर धारण किया है, परिधान के रूप मे, केसरियाबाना, जो बलिदान का परिधान है और जिसकी सौगध खा वह निश्चय अपने सकट को लाँघ जायेगा।

११ | पाकिस्तानी शोले और कुंकुम की प्रतिरक्षा

कश्यप ने ८० मील लम्बी, २५ मील चौडी, पर्वतो से घिरी कश्मीरी झील को सुखाकर धानो के खेत, फलो के बाग और पाम्पुर (पद्मपुर) मे कीमती केसर के फूल उगाये। शान्तिसेवी, देखने मे काफी कमजोर कश्मीरी जाति ने वहा डेरा डाला, जहा प्रकृति ने दोनो हाथो सुघराई के फूल बरसाये थे। एशिया की सारी जातिया, पामीरो के पीछे की समूची दुनिया—चीनी तुर्किस्तान से खुरासान—ईरान तक—कश्मीरी खूबसूरती की कसम खाती थी, समरकन्द और बुखारा के कारीगर कश्मीरी कारीगरो के हाथ चूमते थे, कश्मीरी नार मध्य एशिया की कहानियो मे परियो का आदर पाती थी।

पाम्पुर के मैदानो मे केसर फूलती थी, आज भी फूलती है। कश्मीरी आख्यानो मे उसकी कहानी बार-बार कही गयी है। तक्षक नाग, आखो की पीर से बेहाल, प्रसिद्ध वैद्य वाग्भट्ट के पास पहुचा। हकीम ने हज़ार हिकमत की, पर काम एक न आयी, और नाग तडपता रहा। वाग्भट्ट ने उसका भेद जान लिया—नाग के मुह से जो जहर की भाप बराबर निकलती रहती थी वह दवा के असर को झुलस देती थी, हर दवा बेकार हो

जाती थी। वाग्भट्ट ने पहले नाग का मुह बाधा, फिर दवा लगाकर आखे बाध दी, फिर मुह का बन्धन खोल दिया। उपकृत नागराज ने वैद्यराज को फूल की एक कली दी, कुकुम का बीज, जिसे वाग्भट्ट ने जमीन मे डाल दिया। वैद्य के पास किमान की क्षमता कहा थी जो पौध को सीचता, उसे खाद देता? पर बीज का असर उसने कुछ ही सालो बाद देखा, जब उसके निवास पद्मपुर के खेतो मे केसर के पौधो का सागर लहरा उठा—लाल, नारगी रेशो से भरा बैजनी सागर—जिसे जिसने देखा, मुग्ध हो गया और जो आज 'कश्मीरजन्मा' कुकुम झेलम की उस घाटी कश्मीर का पर्याय बन गया है। अरबो ने कश्मीर की केसर की पौध पश्चिम मे लगायी, दसवी सदी मे स्पेन तक मे वह पौध फूली, और कहते है १८वी सदी तक इग्लैड तक मे, लन्दन के पास, उसके फूल उगाये और लोढे जाते रहे।

'कश्मीरजन्मा' कुकुम कश्मीर मे भी पौध-पौध फूला, पौध-पौध लोढा गया। अबुलफजल के कहने के मुताबिक पाम्पुर की दस-दस, बारह-बारह हजार एकड जमीन, मुगलो के समय, केसर से ढक जाया करती थी। जिन्होने कश्मीर को चिनार दिये, सफेदे दिये, बागोबहार दिये और इस जरिये फरगना-बदख्शॉ के सपने टूट जाने पर उनको कश्मीरी जमीन पर सदेह उतार कर रखा, उन्ही मुगलो से—शहशाह अकबर से। बीरबल ने, कहते है, पाम्पुर की केसरिया जमीन मागकर उन्हे चकित कर दिया। शहशाह ने पूछा, अब क्या दे बीरबल? गाव, नगर बहुत दे चुका, हाथी-घोडो की अकबर

के 'नवरतनो' के नग राजा बीरबल को कमी नही, फिर मागो, बीरबल, तुम्ही कुछ ऐसा मागो, कि देकर निहाल हो जाऊ। और बीरबल ने मागी, चार बीघा जमीन। सारा दरबार हस पडा, पर अकबर विहसकर भी हसा नही। उसने जाना कि नवरतनो का नग अपनी कीमत की चीज माग रहा होगा। उसने फिर पूछा—कहा? बीरबल ने भेदभरी मुस्कान के साथ जवाब दिया—पाम्पुर मे। और पाम्पुर के ज़ायफ़ानी खेत उसे देकर अकबर ने देने की साध मिटा ली।

पाम्पुर के केसर के खेतो पर आग बरसने को हुई। बर्बरता और कर ही क्या सकती है? दोनो ओर से उसने जतन किये, मुजफ्फराबाद—बारामूला की ओर से, गिलगित की ओर से। और अगर भारतीय सेना वहा न पहुच जाती तो पाम्पुर के इन खेतो पर भी आज आग बरसती होती जैसे बारामूला और पट्टन की ललनाओ के ललाट के कुकुम पर कभी बरसी थी।

मुजफ्फराबाद की ओर से पाकिस्तानी पठानो ने जब हमला किया तब गिलगित मे भी एक घटना घटी। कश्मीर के महाराजा हरीसिह ने १९३५ मे ब्रिटिश सरकार को ६० साल के लिए गिलगित को पट्टे मे लिख दिया था। पर सन् ४७ मे समूचे हिन्दुस्तान की तरह कश्मीर भी आजाद हो गया। पट्टा अपने-आप कानूनन टूट जाने से, कश्मीर के दरबार ने शासन के लिए गिलगित एक गवर्नर भेजा। मेजर ब्राउन और उसकी जमात को उकसाकर पाकिस्तान ने उनसे बगावत करा दी और कश्मीरी दरबार के गवर्नर को कैद मे डलवा दिया। साथ ही समूचे गिलगित पर कब्जा भी कर लिया, जिससे

अफगानिस्तान और रूस का पडोस भी भारत की आखो से ओझल हो गया।

उधर बारामूला की राह गावो-नगरो को लूटते-जलाते, पाकिस्तानी हथियारो से लैस, उनकी फौजी गाडियो पर लदे, पठान श्रीनगर से पाच मील के भीतर आ पहुचे। शान्तिप्रिय देश, अम्न को जान मानने वाले कश्मीरी, जो अब तक कराह रहे थे, चुप बैठे न रह सके। कश्मीर का मात्र राजनीतिक दल 'नेशनल कान्फ्रेस' जो पिछले पन्द्रह सालो से देश की जनता को जगा रहा था, मैदान मे उतर आया। हिन्दू-मुसलमान मे कोई भेद न रहा और उसने दोनो की इकट्ठी राष्ट्रीय फौज खडी की। उधर अक्तूबर मे उसने मजबूर किया कि माउण्टबेटेन के एलान के मुताबिक रियासत के राजा हरीसिह तत्काल उडकर दिल्ली जाए और अपनी रियासत को भारत के प्रजातत्र मे मिला दे। महाराज हरीसिह तत्काल उडे और उन्होने दिल्ली मे ब्रिटिश एलान के मुताबिक कश्मीर को भारत को अर्पण करते हुए 'इन्स्ट्रूमेण्ट आफ ऐक्सेशन' पर हस्ताक्षर कर दिये और कश्मीर कानूनी तौर पर भारत का अग बन गया, जैसे कलात पाकिस्तान का अग बन गया था। भारत अपने राजनीतिक शरीर के नवाग—कश्मीर को बचाने के लिए दृढसकल्प कर्त्तव्यारूढ हुआ और उसकी सेनाए श्रीनगर के द्वार पर 'नेशनल काफ्रेस' की नेशनल मिलीशिया के साथ जा डटी। 'लन्दन टाइम्स' के सवाददाता ने लिखा—श्रीनगर शत्रुओ से कुल चार मील दूर रह गया है, सब कुछ बनावटी लगता है, लगता है कि यह हमला बजा और क्रूर है, पर कश्मी

की रक्षा के लिए जो जानें तडप रही है, उनका क्या होगा ? बेशक, इशारा नेशनल मिलीशिया के जवानो की ओर था, जो अपनी जान हथेली पर लिये श्रीनगर-बारामूला की ओर मे पहुचनेवाले नाको पर खडे थे, एथेन्स की रक्षा मे ईरानी सम्राट जरक्सीज की राह रोके जैसे कभी स्पार्ता के वीर खडे हुए थे। उन्ही नाको पर मुहम्मद मकबूल शेरवानी और मास्टर अब्दुल अजीज जूझ गये थे और अब भारतीय सेना का अप्रतिम सिपहसालार उस्मान जूझा। पर पाकिस्तानी फौजो की राह कश्मीर मे रुक गयी। लुटेरो को जिधर राह मिली उधर वे भागे। राह एक ही थी, अपने ही लूटे, उजाडे, जलाये गावो की, बारामूला की राह, पाकिस्तान की ओर।

केसर के खेत बच गये, हुनर की उजडती हुई दुनिया बच गयी, जैनुल आबीदीन की इज्ज़त और याद बच गयी, भारत का कश्मीर बच गया। फारसी कलाम है, इन केसर के खेतो के निस्बत—जाफ़ाने दीदा बायद, राहे हिन्दुस्तान गिरिफत—केसर के फूल जब पकते दिखने लगे तब हिन्तुस्तान की राह लो। तब सर्दियो का आलम होता है और बर्फ बरसाते आसमान के नीचे मुसाफिरो की सम्हाल पाम्पुर मे सम्भव नही, जिससे यह कहावत चली, पर घटी उन पर जो न उनके आशिक थे, न सौदागर, न उनकी खूबसूरती निहारने वाले मुसाफिर। पर वे लौटे कश्मीरी केसर की आस छोड, जब हिन्दुस्तानी फौजे उनकी पीठ पर जा पहुची।

नेशनल काफ्रेस कश्मीरी जनता की स्वीकृत राजनीतिक पार्टी थी। मुगलो, अफगानो, सिक्खो, डोगरो से शोषित कश्मीरी

जनता ने पहली बार उसमे अपना प्रतिनिधान पाया था। नेशनल कान्फ्रेस ने वैयक्तिक स्वतत्रता और सामाजिक अधिकारो की माग की, और उसकी माग को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने सराहा, महात्मा गाधी, अबुलकलाम आजाद, बल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू ने कश्मीरी आशाओ को अपने आशीर्वाद से मूर्तिमान किया। जब कश्मीरो दरबार का नेशनल कान्फ्रेंस ने अपने 'कश्मीर छोडो' आन्दोलन से सामना किया तब दरबार ने तो उसे कुचल डालने के उपक्रम किये ही, पाकिस्तान के कायदे-आजम मुहम्मदअली जिन्ना ने उस आन्दोलन को 'कानून और व्यवस्था तोडनेवाले लुटेरो की बद अमनी' कहा, पर पडित नेहरू ने अपने कश्मीर प्रवेश पर निषेध होने पर भी कान्फ्रेस की मदद के लिए प्रवेश का सत्याग्रह किया और पकडे गये। इस तरह कश्मीरी नेशनल कान्फ्रेस का वह आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के स्वतत्रता अभियान का ही एक दामन था, पर उसकी हकीकत की बेशक मुसलिम लीग कायल न थी। नेशनल कान्फ्रेस ने अपने दोस्त और दुश्मन को पहचाना, अपने आबरू और अस्मत के बचानेवालो को पहचाना, और अगले ही साल सन् ४८ के अक्तूबर मे कश्मीर को भारत का अभिन्न अग और कश्मीर के भारतीय जनतत्र मे प्रवेश को पूर्णत सपन्न ऐलान किया।

वस्तुत यही समुचित सवैधानिक प्रक्रिया थी। पाकिस्तान की जाली अवसरवादी नीति का जवाब न तो जनमत है न राष्ट्रसघ का निर्णय—उसका जवाब बस यही है कि ब्रिटिश सरकार की घोषणा के अनुसार देशी राज्यो के प्रभुओ को जो

अधिकार प्राप्त था उसी अधिकार से कश्मीर के राजा हरीसिह ने अपने राज्य को, पाकिस्तान मे पाकिस्तानी राज्यो की तरह भारत मे भारतीय राज्यो की तरह, अपनी इच्छा से, अपनी प्रजा कश्मीरियो की पाकिस्तानी लुटेरो की लूट, बलात्कार, अग्निकाण्ड की बर्बरता से रक्षा के लिए भारत के अन्तर्गत कर दिया, जिस सवैधानिक और कानूनी क्रिया का समर्थन शीघ्र ही बाद कश्मीरी जनमत से निर्वाचित कश्मीर की विधानसभा ने, उसके नेशनल काफ्रेस ने, अपनी घोषणा द्वारा सपुष्ट कर दिया। और अब भारत अपने उस राज्य की रक्षा के लिए अपना धन-जन उसकी स्वतन्त्रता की वेदी पर, उसके रक्षा-कार्य मे, न्योछावर कर देगा।

पर बात तो केसर की थी, कश्मीरी कुकुम की। केसर जल्दी मरती नही, जल्दी उगती भी नही। आठ साल जमीन बनायी जाती है, बोने के तीन साल बाद उसमे अखुए फूटते हैं, चौदह साल—राम के बनवास जैसी तप की अवधि तक—जीवित बनी रहती है। और इस बीच उसे न तो खाद की जरूरत होती है न सिचाई की। बगैर गर्मी की लपट से झुलसे, बगैर आती हुई बर्फ की चोट से मरे, हिम-आतप दोनो से ऊपर उठ, पौध-पौध फूलो से भर जाती है और फूलो का बैजनी समुन्दर पाम्पुर के खेतो पर लहरा उठता है। यह लाल केसर के बैजनी फूलो का समुन्दर सचमुच कभी दुश्मन के फेके आग के शोलो से झुलसने का नही।

१२ पाकिस्तानी हमला और कश्मीरी अंग्रेज़

सन् १९४७ के गिलगित के मेजर ब्राउन के विद्रोह और पाकिस्तान के, उस विद्रोह से लाभ उठाकर, गिलगित पर अधिकार कर लेने की जो घटना इस देश मे बार-बार कही और सुनी गई थी उसने अग्रेजो की कूटनीति के खिलाफ नौजवानो मे एक तूफान उठा दिया था। अग्रेजो के विरुद्ध तब भारतीयो की तीव्र प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। पर ठीक तभी उसी कश्मीर मे कुछ यूरोपियनो ने जिस धीरज के साथ पाकिस्तानी कबीलाई लुटेरो के हमले का सामना किया और अपनी वीरता द्वारा कश्मीरी लाज की तन रहते रक्षा की थी, वह कहानी, यद्यपि यूरोप और अमेरिका मे महीनो कही-सुनी जाती रही थी, भारत मे बिनकही ही रह गई थी।

कश्मीर की उस दिल हिला देनेवाली लोमहर्षक कहानी को कश्मीरियो से ही सुनकर अभी वहा से लौटा हू और यद्यपि उसे पास के मित्रो से बार-बार कहा है, जैसे कश्मीरी दोस्तो से सिहर-सिहर सुना था, उसे लिख डालने का लोभ भी सवरण न कर सकूगा।

बात तभी की है, सन् १९४७ की, भारत के विभाजन के

समय की, जब देश मज़हबी कठमुल्लो के कारनामो का शिकार, लहूलुहान हो रहा था और पजाब तथा बगाल खून की होली खेल रहे थे। पाकिस्तान ने सोचा, चलो लगे हाथ कश्मीर को भी हडप ले और उसने स्वात-चित्राल के कबीलाई पठानो को अपने साधन का अस्त्र बनाया। और उनकी आग कश्मीर के रगबिरगे शालो-फिरन पर फेकने के पहले उसने कश्मीर को जेर कर लेना मुनासिब समझा।

कश्मीर मे झेलम की राह पाकिस्तान, या यो कहिए कि अविभाजित भारत, से तन धरने के लिए अनिवार्य अनेक चीज़े जाया करती थी—पेट्रोल, गेहू, नमक, मिट्टी का तेल, कपडा, सभी। पाकिस्तान ने इनको भेजना बन्द कर कश्मीर का ब्लाकेड पूरा कर दिया। कश्मीर रोज़ के इस्तेमाल की चीजो के अभाव से परेशान हो उठा, मुसीबत पर मुसीबत झेलने लगा।

और तभी पाकिस्तान ने उस पर गहरा वार किया। अपनी ज़मीन पर कबीलाई इलाको के पठानो को ला खडा किया। कभी मध्य एशिया की गुमराह और लूट और लहू के नाम पर दौड पडनेवाली जातिया जैसे मजहब के झडे के नीचे खडी कर ली जाती थी वैसे ही ये खूनी खानाबदोश जातिया अपने मिट्टी के कोटो से, पहाडी ढालो से भूखी नगी, पाकिस्तान को बरगलाई, खून की प्यासी, बन्दूके लिये कश्मीरी हूरो और कीमती वस्तुओ के लोभ से कश्मीर की सीमा पर ला खडी की गई।

तीन सितबर को तीन सौ वजीरी कश्मीर की ओर अपने दिखाए सपने सही करने, भालो-बदूको से लैस हो, चले। साबा

के पास छिपकर उन्होने एक कश्मीरी को मार डाला। तभी जम्मू पर हमला हुआ, जम्मू प्रान्त के ग्णवीर-सिहपुरा से बारह मील दक्खिन-पूरब, दोहाली नाम के गाव पर। चार सौ पाकिस्तानियो ने जानलेवा हथियारो के साथ गाव पर हमला किया, निहत्थो को मार डाला, घरो को जला दिया।

और तब २० अक्तूबर, १९४७ को ठीक उस दिन से पन्द्रह साल पहले जिस दिन चीनियो ने नेफा पर हमला किया था, पाकिस्तानी कबीलाई पठानो ने, जो अब तक मजहब और लूट के नाम पर इकट्ठे किए जाते रहे थे, मुजफ्फराबाद की कश्मीरी सरहद पर हमला किया। यह हमला कई राहो से हुआ, मुजफ्फराबाद की राह उनमे प्रधान थी। पठानो के हाथ पाकिस्तान द्वारा दिए हथियारो—ब्रेनगनो, स्टेनगनो, गोले-तोपो, होवित्सरो-टैकमार बदूको, जमीनी माइनो—से भरे थे। हमला खूनी हुआ और जब-जब, जहा-जहा पठानो मे व्यवस्था बिगडी, सधी पाकिस्तानो फौजो ने उनकी जगह ले ली।

मुजफ्फराबाद के बाद दोमेल की बारी आई, फिर उरी की, बारामूला, फिर पट्टन की। और जब बूलर जाते समय बस के ड्राइवर ने उरी, बारामूला और पट्टन की ओर इशारा किया तब आखे जैसे बरस पडने को हो आई। बारामूला मे ही खूनी पठानो की राह रोकते हुए मेरा पडोसी आजमगढ का ब्रिगेडियर उस्मान कश्मीर की लाज रखने के लिए शहीद हुआ था, और पट्टन की याद ने तो कश्मीर का इतिहास ही तन के रोम-रोम मे जगा दिया—कश्मीर के प्रसिद्ध विजेता शकरवर्मन् की राज-धानी रहा था यह पट्टन, जहा थोडी ही दूर पर झेलम वूलर

मे समाकर फिर निकल पडती है, और उसी पट्टन को हमलावरो ने कत्लेआम द्वारा तलवार के घाट उतार दिया। इन सारे अधिकृत नगरो की कहानी तब लूट की थी, हत्या, बलात्कार, यन्त्रणा की। हमलावर श्रीनगर के पास तक पहुच गए और उसे और दूसरे कश्मीरी नगरो को बिजली पहुचाने वाले महोरा के हाइड्रो-एलेक्ट्रिक स्टेशन का नाश कर डाला। आस-पास के नगर अन्धकार मे विलीन हो गए।

राह के गाव-नगर चिगेज़ और तैमूर की याद दिलाने लगे, उनके जले, खडे-अधखडे मकान पठानो की गई राह बताने लगे। आहतो के चीत्कार, यन्त्रितो की कराह, बलात्कृतो की पुकार, लूट और हत्याओ की हुकार से पुर-जनपद जब आक्रान्त हो गए तभी वह घटना घटी जिसका जवाब डन्कर्क भी नही है, पर जिसको, प्रतिकारी हथियारबन्द सिपाहियो ने नही, चन्द यूरोपीय पादरियो ने, निहत्थे पुरुषो और स्त्रियो ने, ईसा के बन्दो ने, घटाया था।

बारामूला मे सन्त जोजेफ का कन्वेट था। पठानो ने उस पर हमला किया। शान्ति की रक्षा के लिए, अपने से पहले उस दानवीयता का शिकार न होने देने के लिए, अधेड और वृद्ध पादरी एक के बाद एक सामने आते गए, तलवार और बदूक के घाट उतरते गए। कायदे-आजम के मज़हब के बन्दो ने, जो 'अस्सलाम' शान्ति के नारो से एक-दूसरे का स्वागत करते हैं, उन भगवान के फरिश्तो को ईमान के लिए हलाल कर दिया।

लन्दन के 'डेली एक्सप्रेस' के सवाददाता सिडनी स्मिथ से

उम कन्वेट के निवासी फादर जार्ज शैक्म ने अपनी आखो-देखं घटना का बयान किया—पठानो ने, पाकिस्तानी हमलावरो ने अस्पताल के रोगियो के वार्ड पर हमला किया और उन पः बेतहाशा गोली चलाने लगे ।

एक मुस्लिम महिला ने अभी-अभी बच्चा जना था । हमलावर उस पर लपके । बीस साल की जवान नर्स ने अपना जिस्म उसकी रक्षा मे आगे कर दिया । भगवान बचाए, बताना पः कि उस शहीद का क्या हुआ । पहले वह गोली से मार दी गई, बाद को फिर जच्चा ।

मदर सुपीरियर को जैसे काठ मार गया, पर वह वृद्ध अपना कर्तव्य पालन करने, मौत के पैगाम के बावजूद, आग बढी । उसने लाशो को ढकेलना चाहा । उस पर हमला कर खूनियो ने उसे लूट लिया । फिर जब 'सहयोगी मदर' ने देख कि एक पठान मदर सुपीरियर को मारने के लिए बदूक उठा चुका है, तब वह दौडी और क्षण-भर मे उसके सामने आ गई। गोली उसके दिल के पार हो गई और वह लाशो के ऊपर लुढक गई । मदर सुपोरियर अभो जिन्दा थी, उसने रक्षा का प्रयत्न करनेवालो सहकारिणी को धन्यवाद देने के लिए मुह खोला हो था कि सगीन और गोलो दोनो ने उसका अन्त कर दिया ।

ब्रिटिश फौज का रिटायर्ड कर्नल डाइक्स विश्राम के लिए वही ठहरा हुआ था । जब उससे यह अनर्थ न देखा गया तब उसकी सैनिक वृत्ति जागी पर कबल इसके कि वह कुछ कर सके कबोलाइयो ने उसे पकड लिया और उसका जिस्म गोलियो

से छेद दिया। पत्नी मिसेज डाइक्स पति की मदद के लिए दौडी, गोलियो का शिकार हो गई।

'न्यूयार्क टाइम्स' के सवाददाता राबर्ट ट्रबल ने १० नवबर, १९४७ को बारामूला से लिखा कि कबिलाई भय से भागने से पहले नगर का धन पूरम्पूर लूट चुके थे, एक-एक युवती छीन चुके थे। शिकागो डेली ट्रिब्यून को भेजे अपने 'डिस्पैच' मे असोशिएटेड प्रेस के फोटोग्राफर ने लिखा—'कम से कम बीस गावो को धुआधार जलते मैंने अपनी आखो देखा है, गाव, जिन्हे मुस्लिम हमलावरो ने अग्निसात कर दिया था।'

कश्मीर अपने घावो को सहलाकर फिर खडा हो गया, पर उन घावो से उसे बचा रखने के लिए ईसाई अल्लाह के उन यूरोपीय बन्दो ने बारामूला को जमीन पर जाने दे दी। कश्मीर चाहे अपने घावो को भूल जाए पर अपने इन रक्षको को न भूल पाएगा। कश्मीर के लिए अभी कितनी कुरबानिया और करनी होगी ? पर क्या कोई कुरबानी उसके लिए काफी हो सकती है ?

१३ दिग्विजयी ललितादित्य और कश्मीर की सीमा

जैसे आज भारत की उत्तरी सीमा कश्मीर पर दो-
ओर से सकट के बादल उमड उठे है, कभी पहले भी इस दे
को उनका सामना करना पडा था और अपने सकट के मे'
को भेद वह सूर्य की भाति फिर चमक उठा था। आज के सव
मे इतिहास के उस पुराने सकट और उसके सफल प्रतिकार ‹
कहानी की याद प्राकृतिक है।

सातवी सदी ईस्वी के अन्त की बात है, आठवी के शु
की, जब कश्मीर की सीमा पर पूरब मे तिब्बती भोटिये मड
रहे थे, उत्तर मे चीन चढा आ रहा था, पश्चिम में अरबो
रिसाले काबुल की घाटी पर आख गढाये हिन्दूकुश के उत
पर बदख्शा तक फैले उसके दामन को खीच-खरोच रहे थे, अ
कश्मीर अपनी स्वतन्त्र स्थिति के प्रति शकित हो उठा था
कारण कि कश्मीर तब समूचे भारत का मस्तक न था, अ
न था, भारत तब भारत भी न था। उसके तब अनेक अङ्ग श
सब एक-दूसरे से स्वतन्त्र, यद्यपि एक-दूसरे की मदद करने
वे कभी चूकते न थे।

काबुल पर उन शाहियो का शासन था जिन्हे क

समुद्रगुप्त ने देश से बाहर निकाल दिया था, पर जो क्षत्रिय कर्तव्य मे दक्ष हिन्दूकुश की ऊचाइयो पर चढे देश के पहरुये बने थे, और जो एक ओर ईरानी और मध्य-एशियाई अरबो की चोट सोने पर झेल रहे थे, दूसरी ओर सिन्धी अरबो के तेवर से शकित थे। तभी चीनी सम्राट ने कूचा, खुत्तन, खुरासान पर अधिकार कर लिया, फिर धीरे-धीरे वालतिस्तान भी उसके पैरो मे जा गिरा। कश्मीर के राजाओ के कान खडे हुए क्योकि यह आखिरी वार उनकी सरहद पर था, काराकोरम की पर्वतमाला तक। घटनाओ के चक्र चले, क्रियाए-प्रतिक्रियाए राजनीति के क्षेत्र मे हुई और अभी कशमकश जारी ही थी कि बाप का बेटा ललितादित्य मुक्तापीड दो भाइयो के बाद कश्मीर की गद्दी पर बैठा।

ललितादित्य मुक्तापीड का शासनकाल कश्मीर के इतिहास का प्रकाशबिन्दु है। कश्मीरी इतिहासकार कल्हण ने अपनी राजतरगिणी के चौथे तरग मे इस दिग्विजयी नृपति की चर्चा प्राय ढाई सौ श्लोको (१२५–३७१) मे बडे मनोयोग से की है। ललितादित्य वीर था, मनस्वी था, नगर और वास्तु-निर्माता था। कश्मीर को डावाडोल राजनीति उसकी चिन्ता का विषय बनी और उसी के अनुरूप उसमे महत्त्वाकाक्षा का जन्म हुआ। कल्हण लिखता है कि नदियो का ध्येय समुद्र होने से उनकी धारा की सीमा होती है पर महत्त्वाकाक्षी जनो के मनोरथो की कोई सीमा नही होती, और ललितादित्य की दिग्विजयिनी आकाक्षाओ की भी कोई सीमा नही थी।

पर वास्तविकता तो यह थी कि ललितादित्य अपनी

सीमाओ की रक्षा का साधन-मात्र अपनी महत्त्वाकाक्षा को बनाना चाहता था और उसने सोचा कि जब तक शत्रुओ के राज्य सीमा तक के स्वतन्त्र राज्यो पर अधिकार न कर लिया जाएगा कश्मीर का सङ्कट तब तक बना ही रहेगा। इससे उसने अपनो विजयो की एक योजना तैयार की।

उसी के राज्य कश्मीर के कभी के स्वामी कनिष्क का सङ्कट उसका अजाना न था। कनिष्क ने काबुल और आमू-दरिया की घाटियो के साथ ही काश्मीर की घाटी को भी अपने साम्राज्य का अन्तरग बनाये रखा और कश्मीर के सबध मे तो उसे चीन से कितनी ही लडाइया लडनी पडी। अन्त मे जब चीनी सम्राट् के करद चीनी उपराज्यो पर अपनी प्रभुता प्रतिष्ठित कर उनके राजपुत्रो को पजाब और पेशावर मे अमानत के तौर पर छीन कर उसने रखा तभी कश्मीर का वह चीनी सङ्कट टल सका। ललितादित्य के पडोसी हिन्दूकुश के शाहिय राजा फिर भी अरबो से उसके वामपार्श्व और पश्चिमी सीमा की, अपनी रक्षा द्वारा, स्वाभाविक ही रक्षा कर रहे थे। उसे भिडना चीन और तिब्बत से था और उत्तर के उन मध्य-एशियाई राष्ट्रो से जिनके, चीनी अथवा अरबी दोनो प्रसरनीतियो द्वारा, अकालकवलित हो जाने का डर था। पर उन प्रबल शत्रुओ से भिडने के पहले यह आवश्यक था कि वह अपनी पीठ के सम्भावित शत्रुओ को भयाक्रान्त कर ले। कन्नौज, बङ्गाल और आसाम के राजाओ को अपनी प्रखर प्रभुता से विजित मित्र बना उसने उत्तर की ओर रुख़ किया।

सबसे प्रबल, सभवत चीन से भी प्रबल, तब तिब्बत था

जिससे चीन की भी अकसर मुठभेड़े हो जाया करती थी। लद्दाख के लिए कश्मीर और भोट यानी तिब्बत मे युद्ध तो आये-दिन हो ही जाया करते थे। इन प्रबल शत्रुओ को पूरब और उत्तर-पूरब छोड ललितादित्य ने पहले उत्तर-पश्चिम की ओर रुख किया, इस अर्थ कि प्रबलतम शत्रु से लोहा लेते समय अपनी सारी विजित शक्ति उस मोर्चे पर मकेद्रित कर दी जा सके।

पहले वह उत्तर-पश्चिम की ओर चला, अश्वसाधन कम्बोजो की ओर, जो घोडो की नस्ले तैयार कर बेचा भी करते थे, सफल घुडसवार भी थे। यह अत्यन्त प्राचीन पर जैसे पर-परयासिद्ध बात थी कि भारतीय विजेता जब घर से बाहर देखते थे तब पहले आमू या वक्षु की घाटी की ओर, बदख्शा की ओर, ठीक जैसे उस घाटी और उसके फरगना-बदख्शा से बाबर ने हिन्दुस्तान को देखा था, फिर उसके हिन्दुस्तानी वशजो ने बार-बार हिन्दुस्तान से उस घाटी को जीतने के सपने देखे थे। बहुत पहले, कभी रघु ने उस घाटी मे लौटते हुए कम्बोजो के अखरोटो-भरे देश को जीता था। ललितादित्य ने भी पहले उसी देश की ओर रुख किया और, कल्हण लिखता है, भागे हुए कम्बोजो के कारण घुडसालो के खाली हो जाने से उन पर अन्धकार का कालापन जो छाया तो लगता था, जैसे भैसो ने उन पर आक्रमण कर दिया हो।

उन्हे जीत ललितादित्य तुखारिस्तान की ओर बढा तो तुखारी उसके विक्रम से अपहृत अपने गाव-नगर छोड पर्वत की चोटियो पर, उनकी कन्दराओ मे, जा छिपे। इस प्रकार जब

मध्य एशिया के अनेक राज्यो को जीत ललितादित्य पूरब की ओर बढा तब दरदो को उसने कुचल डाला, क्योकि उसके राज्य के पहले पडोसी होने के कारण वे उसके स्वाभाविक शत्रु थे। उनसे निपटकर उसने दम लिया क्योकि अब शत्रु दो रह गये थे, चीन और भोट(तिब्बत)। उसने पहले लोहे को लोहे से काटना निश्चित कर भेद से काम लेने का सकल्प किया।

चीनी इतिहास से सिद्ध है कि मो-तो-पी (मुक्तापीड) ने पहले चीन को अपना दूत उ-लि-तो भेजा। उसके दूत ने नित्य उखडते जाते ताग राजवश के सम्राट को समझाया कि अरबो और तुर्को का हमला चीन पर शीघ्र ही होनेवाला है और अगर वह हमला हुआ तो तिब्बत का काटा बगल मे गहरा गड दिल को छेद देगा। अच्छा हो, हम दोनो मिलकर उस तिब्बत के काटे को उखाड दे। उसके दूत ने यह भी कहा कि तिब्बत जानेवाले मध्य एशिया के पाचो रास्ते मुक्तापीड ने बन्द कर दिये है और अब आवश्यकता है दो लाख चीनी सेना की मदद की जिसे हम अपने तरीके से महापद्मसागर(वूलर) के तट पर तैयार कर तिब्बत के विरुद्ध उसका उपयोग करेगे। चीनी सम्राट को तिब्बत के भय से जब यह मन्जूर न हो सका तब तुर्को के सरदार गान-लाह-शान को ललितादित्य ने सम्राट के विरुद्ध उभाडा और उस चीनी जनरल के आक्रमण के कारण जो गृहयुद्ध चीन मे शुरू हुआ उससे चीनी सम्राट को अपना सिहासन छोड भागना पडा। ललितादित्य के लिए अब मैदान साफ था। दक्षिण और पश्चिम के शत्रुओ से राज्य को निरापद कर उसने तिब्बत से लोहा लेने की ठानी। तिब्बत अब

अकेला हो गया।

लद्दाख पर बार-बार कश्मीर का अधिकार होता था, पर तिब्बत की कोशिश यही रही थी कि वह उसे कश्मीर से छीन ले। ललितादित्य ने अब अपनी समूची सेना के साथ तिब्बत पर आक्रमण किया और मोर्चे पर मोर्चा बनाता, मोर्चा-मोर्चा जीतता वह तिब्बत की पश्चिमी सीमा मे बहुत गहरा पिल पडा। समूचा लद्दाख उसके अधिकार मे तो आ ही गया, सभवत राजधानी लासा को छोड तिब्बत का समूचा पश्चिमी भाग भी कश्मीर के अधिकार मे आ गया। ललितादित्य ने इतनी बार भोटो को परास्त किया कि लद्दाख के सबध मे अब उसे उससे कोई डर न रहा। हिदूकुश से आधे तिब्बत तक फैली हिमालय की काराकोरम की पर्वतमाला समूची अपनी हो गयी पीछे के पामीरो तक।

लद्दाख की यह कश्मीर द्वारा विजय कश्मीर के इतिहास मे सदा बडे महत्त्व की मानी गयी है। कल्हण ने राजतरगिणी मे चैत्र की द्वितीया को लद्दाख की जीत का त्योहार कश्मीरियो द्वारा मनाये जाने का उल्लेख किया है। तब तक ललितादित्य की उस लद्दाख विजय को पूरे चार सौ साल हो चुके थे। यह कश्मीरी राष्ट्रीय त्योहार बहुत पीछे तक कश्मीर मे मनाया जाता रहा था। क्या हमारा उस विजय के त्योहार को पुनरुज्जीवित कर मनाना उचित न होगा ?

तब, जब कश्मीर ने तिब्बत से लद्दाख जीता था, भारत विविध राज्यो मे बटा हुआ था। आज उन सारे राज्यो की सङ्गठित शक्ति अकेले भारत की अखण्ड अपनी है। क्या यह

सभव है कि हम अपने नये शत्रुओ के अजगरी दाढो मे उसे चुपचाप चले जाने दे ? पाकिस्तान कश्मीर के पश्चिम से आक्रमण करने को उद्यत है, चीन उत्तर और पूरब से उस पर चील की तरह मडरा रहा है । इसलिए कि पहले मूर्ख पाकिस्तान को प्रलोभनो से मूडकर उससे उसका अधिकृत लद्दाख और काराकोरम का भाग हडप ले, फिर काश्मीर को लेकर खुद पाकिस्तान से समझ ले। दोनो का जवाब बस एक है—हिन्दुस्तान का शक्ति-सचय जिससे वह अपने मस्तक कश्मीर की, और उस पर छायी पर्वत-शृखलाओ के रूप मे फैले अपने केशराशि की रक्षा मे सन्नद्ध हो जाए ।

१४ | लद्दाख

यह शायद सभी न जानते हो कि अगर कश्मीर से सीधी रेखा पश्चिम को अतलान्तिक महासागर तक खीची जाय तो वह यूरोप के दक्षिण-पश्चिमी देश स्पेन होकर गुज़रेगी। गरज़ कि कश्मीर उसी देशान्तर मे है जिसमे स्पेन है। इतना ही नही बल्कि यह भी शायद आम जानी हुई बात नही कि कश्मीर का उत्तरी भाग तिब्बत के उत्तरी भाग से कही उत्तर-मध्य एशिया की कोख मे स्थित है। लद्दाख़ कश्मीर और तिब्बत के बीच मे है, कश्मीर से पूरब और तिब्बत से पश्चिमोत्तर।

कश्मीर का राज्य तीन प्रान्तो मे बटा है—१ जम्मू, २. कश्मीर की घाटी जो वस्तुत झेलम और सिन्ध (इन्डस् नही) की घाटी है, ३ लद्दाख़। जम्मू पजाब का ही प्रसार है, पीर पजाल के साये मे बसा भूखड। कश्मीर की घाटी उन अनेक प्रकार के चावलो, कमलो और केसर की भूमि है जिसके बखान से सस्कृत का साहित्य भरा है और वरुण की हज़ार धाराओ से शीतल जिसका शारदा नाम सार्थक है।

लद्दाख एक ओर तिब्बत और कैलास को छूता है, दूसरी ओर मध्य एशियाई तुर्किस्तान की राह को, तीसरी ओर हसती कश्मीर की उस घाटी को जिसके माथे की वेणी बनता सिन्धु-

नद (इन्डस्) लद्दाख के उत्तरी भाग को सीचता पठानिस्तान की ओर चला जाता है और जिसके अगाग मे अपनी तीव्र गति मे स्फूर्ति उत्पन्न करने वाली चन्द्रभागा (चिनाब) लद्दाख को चीरती नीचे के आगन मे उतर आती है।

लद्दाख—मक्खन का देश—जादू का देश है, जैसे पूरबी भारत मे कामरूप का असम देश है। श्रीनगर की सडको पर अक्सर मझोले कद के मर्द अपनी गृहणियो के साथ दिख जाते है जिनके सिर पर कानो को ढकनेवाली कनपटी पर उल्टी फेल्ट या तगी रुई की टोपी चिपकी होती है, जिस्म पर लम्बा लबादा होता है, नीचे प्राय घुटनो की ऊचाई तक के फेल्ट बूट होते है—ऐसे नर-नारी जिन पर नजर पडते ही उनकी आखे हँस देती है—लद्दाखी होते है। अपने प्रान्त की राजधानी लेह से चौदह रोज प्राय पैदल चलकर ये श्रीनगर आ पहुचते है, वहा अनेक प्रकार की अपनी चीजे बेचते है जिनमे, चवरो के अतिरिक्त वे विभिन्न पत्थर भी होते है जिन्हे दिल्ली और बम्बई की शालीन महिलाए अपने सौन्दर्य-वर्द्धक अभूषणो मे जडवा निहाल होती है।

श्रीनगर से बस से चलकर वूलर झील की परिक्रमा कर कश्मीर की राजधानी को लौटने के प्राय १८ मील पहले गन्धर्बल मिलता है। वही से उत्तर-पूरब की ओर पुल के पास एक राह फूट गई है। लद्दाख जाने वाले वही से बलतल पहुचते हैं और प्रसिद्ध जोजि-ला का दर्रा पार कर उस लद्दाख की भूमि पर पाव रखते है जो ऊचा पठार होकर भी खासा गर्म है। पहले बाल्तिस्तान मिलता है जहा के निवासियो के चेहरे-

मोहरे प्राय , लद्दाखी लिबास के बावजूद, कश्मीरियो से मिलते है और लद्दाखियो से सर्वथा भिन्न हैं, दरदो, तुखारियो, आर्यो की नस्ल । इस भू-भाग के प्रवान नगर द्रास से चलकर यात्री पहले करगिल पहुचते है फिर मूलबेक और फिर सिन्धुनद पार कोलात्से और लेह, जो लद्दाख की राजधानी है। जैसे किमी जमाने मे इसी सिन्धुनद के मुहाने के प्रधान नगर मोहन-जोदडो मे मिस्री, बाबुली, असुर आदि विविध जातियो के विदेशी मिला करते थे वैसे ही लेह की सडको पर अभी हाल तक तिब्बती, चीनी, मगोल, तुर्क, अफगान एक साथ डोला करते थे । कारण कि लेह मध्य एशिया से कश्मीर और भारत जाने वाले वणिक्पथ पर स्थित है और हमारे देश को उत्तर की ओर से आनेवाली थल की राहे उसी लेह मे समाप्त होती है । जैसे पश्चिमी जगत् से जल की राह आनेवाली वस्तुए भारत के पश्चिमी तट पर उतर कर मध्य देश की प्रधान मण्डी् उज्जैनी की राह लेती थी, वही से चारो दिशाओ मे वितरित होती थी, वैसे ही इस देश से चीन, मगोलिया, तुर्किस्तान, खुरासान, आरमीनिया, फिलिस्तीन जाने वाले कारवा इसी लेह से होकर गुजरते थे, यही दम लेते थे, यही से आरम्भ होते, यही समाप्त होते थे। चाहे वह देश, जिसे आज हम लद्दाख़ कहते है, और जो भारत वसुन्धरा का बाया अपाग है, देखने मे खुद ऊसर और गरीव लगता हो, बेशक उसकी जमीन के ऊपर से ऐश्वर्यशाली सम्राटो के व्यवहार की वस्तुए गुजरती रही हैं । इसी लेह की राह कभी हमारे देश की मलमल और मोर जुरूसलम पहुचे थे, दाऊद और सुलेमान

के महलो इसी को राह खच्चरो और गधो पर लदकर वे हस्तलिपिया गयी थी जिनके प्रचार के लिये आज के कृतघ्न, पर तब के कृतज्ञ, चीन ने मुद्रण यत्र का आविष्कार किया था, जिस राह गये हमारे काटे के जवाब मे फूल बोने वाले के साधुओ के पदचिन्ह, बर्फ, तूफान और पीली रेत के बावजूद, आज तक न मिट सके।

जो लद्दाख के पठार को तिब्बत का प्रसार मानते है उन्हें शायद पता नही कि लेह से लासा पहुचने की राह, हिमालय की एकता के बावजूद, उत्तर की ओर से बीहड और लम्बी है, करीब तीन महीने की। भारत की राह वही केवल महीने भर की है, जिससे लासा जाने वाले लद्दाखी अभी हाल चीनी हमले के पहले, तक चौदह रोज मे श्रीनगर-पठानकोट पहुच कलकत्ते से कलिमपोग-सिक्किम की राह हफ्तो मे लासा पहुच जाते थे।

लद्दाख लम्बी-चौडी पहाडी भूमि है, करीब ३०,००० वर्गमील, जहा के निवासी असल मे जमीन पर न रहकर आसमान पर रहते है। सोचिये जरा, कि मसूरी और श्रीनगर की ऊँचाई कुल ५,००० फुट से थोडी ही ऊँची है पर लद्दाख की नीची से नीची भूमि ८,००० फुट से अधिक ऊँची है और वहा के निवासी १२,००० से १५,००० फुट तक की ऊँची भूमि पर निवास करते है। तिब्बत को छोडकर ससार का कोई देश नही जहा के रहने वाले जमीन से इतने ऊँचे, आसमान के इतने पास रहते हो। लद्दाख की उत्तरी सीमा धरती हिमालय के कराकोरम की वह पर्वतमाला चली गई है जिसकी कुछ चोटिया ससार के उच्चतम गिरिशिखरो मे गिनी जाती

है। काराकोरम के दक्षिण लद्दाख नाम की ही दूसरी पर्वतश्रेणी है, घनी ऊँची, मस्तक से हिमधवल। और सबसे दक्खिन वह पर्वतमाला है जस्कर, जिसे भेद कर वेदो का हमारा महान् सिन्धुनद कश्मीर का परकोटा बनाता महर्षि पाणिनि के गाव शालातुर की ओर उतर जाता है। अपने प्राचीनो का मत था कि सिन्धुनद की धारा जिस भूमि का धरती है वह समूची भारतभूमि है। आज उनके इस वाक्य का—उनका पुण्य क्षाण हो जाने के कारण, उनकी सन्तान के निर्वीर्य हो जाने के कारण अश-मात्र ही सत्य रह गया है, पश्चिमाश प्रान्त मे, गिलगित से लद्दाख तक।

सिन्धुनद की लद्दाखी घाटी के उत्तर शियोक की घाटी है, काराकोरम और लद्दाख की पर्वतमालाओ के बीच, जहा बादामो और अखरोटो के पेडो के फल हल्की हवा से भी परस्पर टकराते वह झकार उत्पन्न करते है जो प्रकृत वाद्य के है। नीचे दक्खिन की ओर चिनाब और सतलज की घाटिया है, सिन्धु की घाटी की ही तरह अन्नो की बखारे, जहा कुछ अन्नो की बाले १४,००० फुट की ऊँचाई पर भी पककर झूमती झकारती है।

कौन सोच सकता है कि ये नदिया जो नीचे के मैदानो को इतना उर्वर बनाती है, लद्दाख जैसे एक ऐसे भारतीय प्रान्त से भी होकर गुजरती हैं जहा उनकी घाटियो के अतिरिक्त कही कोई अन्न नही उपजता। प्रकृति की असामान्य विडम्बना है कि ऐसे ऊँचे पठार पर बहुत कम पानी बरसता है, बहुत कम बर्फ गिरती है, दिन मे बेहद गर्मी पडती है, रात

मे बेहद सर्दी, और रेतीली जमीन उत्तर की ओर फैलती, दर्रो के पार गोबी का रेगिस्तान बन जाती है। भेडो और बकरियो के बावजूद वहा चरागाह बहुत कम है पर ऊन वहा होती है, खासी, गरम, और सच मानिए, यह कुछ व्यग्य नही है, कि उस भूखण्ड का नाम जिसे आज लद्दाख कहते है कभी मर-युल था, 'मक्खन का देश'। हा, मक्खन वहा बहुत होता है और उसका राज अकसर चाय मे खुल जाया करता है। चाय वहा सदा केवल नमकीन ही नही पी जाती, मक्खन घोटकर एक खास किस्म का स्वाद भी वह पैदा करती है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

पर इससे कही अधिक अचरज और भेद की एक दूसरी बात है, जिसे सुनें। देश बहुत है, जहा कला का प्रचार है, लोग बारीक रुचि के है, सुरुचि के, जो गलीचो का इस्तेमाल करते है, लकडी के कटाव की चीजो का उपयोग करते है, महलो मे रहते है। पर वे सारे एक साथ भी बाहर से गन्दे दिखने वाले, नितान्त निर्धन लगने वाले लद्दाखियो का सुरुचि मे, कला की वस्तुओ के व्यवहार मे, मुकाबिला नही कर सकते। उन गिरिशिखरो के मठो की अट्टालिकाओ की बात तो जाने दीजिए, जहा कला और ज्ञान की ससार मे अलभ्य वस्तुए अटी पडी है, साधारण से साधारण लद्दाखी गृहस्थ के मकान मे भा लकडी और ऊन की बनी जिन चीजो का व्यवहार होता है वे कही भी ऐश्वर्यशाली घरो मे सुरुचि के नमूने मानी जायेंगी। और जो अपेक्षाकृत कुछ कम निर्धन है उनकी गग-जमुनी धातु की वस्तुए तो 'फिलिग्री' के वे नमूने प्रस्तुत

करती है जिनका मुकाबिला अन्यत्र अप्राप्य है।

किसानो तक के मकान दोमजिले होते हैं। नीचे का तह भडार, मवेशी आदि रखने के काम आता है, ऊपर की मजिल रहने के। पौरुष चाहे पुरुष के पास जितना हो, गृह का सचालन लद्दाखी नारी करती है, जिसकी राह मे उसके पुरुष कभी नही आते। 'पुरुष' शब्द का व्यवहार मैने बहुवचन मे किया है, विशेष प्रयोजन से। लद्दाख मे तिब्बत की ही तरह मातृसत्ताक परम्परा अपनी चरमसीमा को पहुच गई है। मातृसत्ता का उपयोग वहा सम्पत्ति के क्षेत्र मे नही होता, जो निष्कर्ष साधारणत इस शब्द के प्रयोग से निकला करता है। मातृसत्ताक स्थिति वहा सामाजिक है, बहुपतित्व के अर्थ मे। एक की शक्ति अनेक के समक्ष स्वभावतया सिद्ध है, क्योकि अनेक एक को सीमित करते है। भारतीय नारी समाज मे बहुश एक की अनेक रही है, कम से कम उसकी अनेकता मे कानूनी प्रतिबन्ध नही रहा है, वह शास्त्रत सम्मत भी रहा है, जिससे उसके अधिकार भी सीमित रहे है। लद्दाखी पत्नी की स्थिति इसके ठीक विपरीत है, क्योकि वह अनेक की एक होती है। उसके पति के कुल के प्राय सारे भाई, कम से कम दो, उस अकेली से ब्याह करते है। इसी स्थिति को महर्षि वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' मे गोयूथिकम् कहा है। सारे भाइयो की एक साथ वह रानी होती है और भाइयो मे उसके कारण कभी खटपट नही होती। महाभारत मे अर्जुन के दिग्विजय के अवसर पर कामरूप की ओर 'स्त्री-राज्य' की कल्पना की गई है जो वस्तुत असम के पूर्व के नागाओ के

सम्बन्ध मे सही है। वही कल्पना कल्हण ने अपनी 'राज-तरगिणी' मे ललितादित्य की दिग्विजय मे मूर्त की है। परपतियो की भगिनी होकर भी लद्दाख की कुलपत्नी स्त्री-राज्य की नही पुरुष-राज्य की शासिका है। और जिस सुजनता और सफलता से गृह का नियोजन और पतियो के भावबन्ध का चारित्रिक मदिर अनुशासन करती है वही लद्दाखियो के परस्पर तथा अतिथियो के प्रति आचरण मे प्रकट होता है। उनका सौजन्य सराहनीय है, कोई विदेशी उनके मधुर भाषण और मधुरतर मुसकान से प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। मुसकान, जो बादामी आखो को कुछ और पतली, लम्बी, मुखमडल के ऊपरी भाग को कुछ और व्यापक, ठुड्डी को कुछ और नुकीली, आकर्षण को अधिक मधुमय कर देती है। लद्दाख का जादू चल जाता है, यात्री घर की दूरी भूल जाता है, काराकोरम की बर्फ के बावजूद, लद्दाखी पर्वतमाला के बावजूद, जस्कर की गिरिशृखला के बावजूद।

लामाओ का यह देश न केवल सदा भारत का इष्ट रहा है बल्कि उसका निजी अपना। यद्यपि आज उसपर शत्रु की आखे गडी है, वह फिर समूचा अपना होगा, जैसे वह सदा अपना रहा है। उसी की राह भारतीय साहसी सेनाओ ने कैलास तक की पश्चिमी भूमि अपने अधिकार मे की है, उसी की राह वे काराकोरम की पर्वतमाला को लाघ एशियाई तुर्किस्तान की ओर तक समय-समय पर जा पहुची है। निश्चय वह मानस और कैलासवर्ती भूमि, जिसके पास ही सिन्धुनद, चिनाव और सतलज के उद्गम है, कोई हमसे ले न सकेगा, सदा हमारी होगी।

१५ | कालिदास का हिमालय

हिमालय भारतीय सस्कृति का मूर्धन्य प्रतीक रहा है। वैसे तो समूचा भारतीय साहित्य उसके सान्निध्य से समुन्नत हुआ है, सस्कृत के सारे काव्यो मे उसकी प्रशस्ति उपलब्ध है, पर कालिदास को हिमालय विशेष प्रिय है और अपने काव्यो मे वे बार-बार पर्वतराज की ओर आकृष्ट होते है। कुमारसम्भव का समूचा काव्यविन्यास उसी गिरिराज के शिखरो पर, उपत्यकाओ मे, अचल-प्रसार पर हुआ है, मेघदूत का उत्तर भाग कनखल की पर्वती ढलान से चढकर कैलाश और मानस तक जा पहुचता है जहा कवि की अलका स्निग्ध-गभीर पुष्कर-नाद से गूजते अपनी भित्ति-चित्रो की सम्पदा लिये प्रासाद खडे है और जहा अलका की श्वेत सारी गगा की धारा बन कटि भाग से छूट पडी है, रघुवश के पहले, दूसरे और चौथे सर्गो की भावभूमि भी हिमालय की छाया मे ही उठी है, अभिज्ञान-शाकुन्तल के सातवे अक और विक्रमोर्वशी के चौथे अक की घटनाए उसी नगाधिराज की उच्चावच भूमि पर अनावृत होती है।

और वह नगाधिराज हिमालय, भारत का जागरूक प्रहरी, उसकी उत्तरी सीमा का निर्माणकर्ता, पूर्वसागर से पश्चिमसागर

तक, पृथ्वी के मानदण्ड की भाति उसे नापता चला गया है। पूर्वसागर निश्चय उत्तरी सीमा के पूर्वी भाग से पर्याप्त दक्षिण पडता है पर कवि की आदर्श राष्ट्रीय कल्पना मे नेफा के पूर्वतम उत्तरी भाग से उतरती असम और बर्मा के बीच से होती अखण्ड शिलाओ की जो रेखा बगाल की खाडी तक चली गयी है वही देश की पूर्वतम सीमा का निर्माण करती है, जैसे उसकी पश्चिमी सीमा का निर्माण वह हिन्दूकुश करता है, जिसका एक छोर पामीरो की ग्रथि के पास काराकोरम की शृखला पूर्व मे छूता अफगानिस्तान का शिरोभाग बनता अरब सागर तक चला गया है और जिसका पिछला उतार ईरान के पठार को छू लेता है।

हिमालय की इसी दीवार से निकलकर सिन्धु, गगा और ब्रह्मपुत्र की धाराए शतधार हो इस देश की उत्तरवर्ती भूमि को उर्वर करती थी, आज भी उनकी अनेक धाराए देश की भूमि को बहुविध सीचती है।

पामीरो की वक्रकुण्डली से निकल यह पर्वतमाला ससार के उच्चतम शिखरो का धवल मस्तक धारण किए प्राय दो हजार मील दौडती चली गयी है और तुषारावृत धवल प्रसार के कारण सहज ही अपना हिमाद्रि तथा हिमालय नाम सार्थक करती है। कवि ने उसके अनेक गगनचुम्बी शिखरो का उल्लेख कैलाश, गौरीशिखर, गन्धमादन, मन्दर, मेरु और सुमेरु नामो से किया है। कैलाश, क्रौचरन्ध्र अथवा नीतिपास के पूरब, दार्चिन अथवा गगोत्री से परे, मानसरोवर से कोई २५ मील उत्तर शिव के 'घनीभूत अट्टहास' सा खडा है, जिसके स्फटिक

तुषार-दर्पण के सामने खडी हो देव ललनाए अपना काय-प्रसाधन करती है। कभी रावण ने अपनी भुजाओ का बल परखने के लिए कैलाश को झकझोर दिया था जिससे उसकी सन्धिया ढीली हो गयी थी, चूले हिल गयी थी और उस पर्वत के निवासी जीव पार्वती-सहित सहसा सन्त्रस्त हो उठे थे। यही कैलाश 'एकपिगलगिरि' है, कुबेरशैल, जहा यक्षराज धनद कुबेर निवास कर अलका के प्रासादो को अपने सबध से ऋद्ध करते हैं। वही हेमकूट के शिखर पर महर्षि मरीचि ने शकुन्तला को शरण दी थी, जहा वर्णचित्रित मृत्तिकामयूर को परे फेक भरत सिंहो के दाढ गिना करता था और पुरूरवा ने जहाँ दैत्य केशी के अक से बारबनिता उर्वशी को झपटकर छीन लिया था। कभी तिब्बतियो का वह प्रसिद्ध 'खग-रिन-पोचे' नाम का यह कैलाश हमारी उत्तरतम सीमा का सतरी था।

गधमादन कैलाश के शिखर का ही एक भाग है, सभवत उसका दक्षिणी भाग, जहा शिव का दाम्पत्य विलास पलता है और जिसके वन-प्रान्त मे उर्वशी को खोकर पुरूरवा लतावितानो से, तरुपल्लवो से प्रिया की राह पूछता है, जहा मन्दाकिनी के तीर सिकता के पर्वत फैले हैं, हसो का धवल अचल लहराता है, जाह्नवी पुलिन के चारुदर्शन होते है। गधमादन पर्वत का मोह न केवल कविवर को है बल्कि समूची भारतीय पौराणिक कथाकारिता का वह ललित दर्शन है जिससे उसकी भौगोलिक सीमाए प्रवहमान बन जाती है, कैलाश से बदरिकाश्रम तक, गढवाल के उन पहाडो तक जहा से होकर अलकनन्दा की पवित्र धारा दक्षिणवर्ती उतार पर बह जाती है।

पास ही मन्दर है, बदरिकाश्रम के नरनारायण का मन्दिर धारण करने वाला मन्दराचल। महाभारत को उसे कैलाश और गधमादन की ही दिशा मे कैलाश के उत्तर रखना अभिप्रेत है। शिव का दाम्पत्य विलास मेरु पर पलकर इसी मन्दर की गुहाओ मे कुछ काल खो जाता है, फिर कैलाश और गधमादन की ओर उसका सक्रमण होता है।

मेरु (सुमेरु), जहा उमा का तप पूत मुख विजित्त शकर पहली बार अनवगुण्ठित करते है, कैलाशवर्ती ही है, उससे बहुत दूर नही, रुद्रहिमालय मे ही अवस्थित, जहा से जाह्नवी अपना जीवन पाती है। मत्स्यपुराण ने राष्ट्रीय मोह से सुमेरु की सरहद बाधी है—उत्तर मे उत्तरकुरु, दक्षिण मे भारनवर्ष, पश्चिम मे केतुमाला, पूरब मे फिर भारतवर्ष। सुमेरु चाहे जहा रहा हो पर उसका मोह भी भारतीयो से न छूटा और गढवाल का केदारनाथ आज भी परम्परया उसी नाम से मुखर है। सुमेरु स्वर्णमण्डित है, विद्याधरो, किन्नरो, अश्वमुख्यो, किपुरुषो का आवास, जिसका स्वर्ण चाहे लुट जाय पर जिसके प्रसार पर बालारुण और अस्तगामी सूर्य द्वारा प्रात-सध्या बिखेरा सोना कौन हर सकता है ?

कालिदास की भारती जिस लोकोत्तर भाव गरिमा से हिमालय का उल्लेख करती है, वैसा उल्लेख किसी कवि ने किसी गिरि का नही किया। घनश्याम मेघ गिरिराज के कटिभाग को अपने श्यामल आवर्त से घेर लेते है। उनकी शीतल छाया मे सिद्ध-वनिताए वात और वर्षा से डरी शिखर-शिखर जा धूप का सेवन करती है। हसो की पाते नीचे के सूखे मैदानो से

उडकर गिरिमण्डित गगा की ओर उड आती है, जहा उस पवित्र धारा की नीहारिकाओ से बोझिल वायु यात्रियो का श्रम हरती है, किन्नरियो के गायन मे कम्पन भरती है, बनैले बासो के रध्रो मे प्रवेश कर उनमे वशी का स्वर फूकती है, भोज तरुओ से पतित पत्रो से मरमर ध्वनि उत्पन्न करती है। नमेरु वृक्षो की घनी छाया मे कस्तूरीमृग शिलाओ पर बैठ विश्राम करते है और शिलाए उनकी गध से महमह हो उठती है। देवदारुओ के घने वन मे उनकी शाखाए परस्पर जो रगड जाती है तो सहमा दावानल भडक उठता है और तमपूरित रात्रि भासमान हो उठती है। हिमालय फिर भी दावानल के वैश्वानर से रात्रि को प्रकाशित होने की अपेक्षा नही करता, अनेक-अनेक औषधिया उसके वनप्रान्तर मे फैली है, जो दिवा का अवसान होते ही बल उठती है और रजनी विभावरी हो जाती है, तैलहीन दीप चहु ओर जैसे जल उठते है। उधर वह क्रौचरध्र है, कुमाऊ का नीति-पास, तिब्बत जाने का द्वार, जो परशुराम की शक्ति की घोषणा आज भी अपने घाव द्वारा कर रहा है—कभी उस वीरकर्मा विप्र ने अपनी धुनुर्विद्या की परीक्षा के लिए उधर तीर मारा था और क्रौचरन्ध्र बन गया था। पहले उस राह हम उडे फिर भारतीय यात्री चले, जिधर कैलाश हाल के कटे हाथीदान की तरह खडा था। और उसी शकर के श्वेतावास की छाया मे मानस का वह पुनीत सर है जहा स्वर्णकमल खिलते है, जहा वर्षारम्भ के लिए नीचे के गावो के सरो के हम मृणाल का पाथेय ले उड पडते हैं। मानस के स्वर्णकमलो के प्रति, पीतारविदो के प्रति, राजहसो-

राजहसियो का आग्रह क्यो न हो। मैदानो मे जब नदिया उमड पडती है, धरा पर छाया वर्षाजल जब उनके आहार को ढक लेता है तब मानसवर्ती शिलाए ही उनका आवास बनती है। मन्दाकिनी के तीर विद्याधरो की बालाए स्वर्णसिकता से खेलती है और यक्षो की अलका के प्रासादो मे जो रत्नदीप जलते हैं उनकी लौ कामातुर यक्षो की सतायी यक्षिणिया लाजवश मुट्ठी भर-भर चूर्ण फेक-फेककर भी नही बुझा पाती। नगाधिराज हिमालय के प्रान्तर पर डोलती चवरी गाये अपने पुच्छ-चवर झल गिरिराज के राजत्व का परिच्छेद पूर्ण करती है। गिरिराज की गुहाओ मे मृगराज रमते है, और जब-तब वनचर दम्पति, जब उनकी काम-केलि को ढकने के लिए झीने मेघ तिरस्कारिणी बन गुहा के द्वार पर लटक जाते है।

हिमालय अनन्त रत्न प्रसव करता है जिन्हे वहा के वनचर प्राय खोजते फिरते है। जब सिह गजो के गण्डस्थल पजो के प्रहार से विदार गजमुक्ता झपट लेते है, कवि कहता है, तब गजमुक्ताओ को हेरते वनचर उनका सुराग सिहो के पजो की राह मे छोडी रक्तछाप से पाते है। गजो के झुण्ड जब देवदारुओ को रगडकर तोड देते है तब वनान्त तक उन तरुओ के क्षीर की तेज गध फैल जाती है। जिन देवदारुओ को पार्वती अपना तनय मान अपने दूध से पालती है, उन्हे क्रूर गज जब तोडकर नष्ट कर देते है तब भला पार्वती के वाहन क्रूरतर सिह उन्हे समुचित दण्ड क्यो न दे?

गौरीशिखर का पवित्र पर्वत नेपाल मे है—गौरीशकर के नाम से विख्यात। अनेक लोगो ने इसे माउण्ट एवरेस्ट माना

है जिस पर भारतीय शेरपा ने एक दिन भारत का झण्डा गाड दिया था। एवरेस्ट चाहे गौरीशकर न हो, पर निस्सन्देह गौरीशकर आज हिमालय की जिस पर्वतमाला मे है वह कभी भारतीयो का वन्द्य था, जैसे वह आज भी उनका वन्द्य है, यद्यपि जो एवरेस्ट की ही भाति आज हमारी सीमा से हट गया है और जिसका प्रत्यक्ष-मात्र हम दूर दार्जिलिग से कर पाते हैं।

हिमालय की पर्वतमाला मे अनेक प्रपात है जिनकी सख्या पावस मे गणनातीत हो जाती है। इनमे से दो—गगाप्रपात और महाकोशीप्रपात—का कालिदास ने उल्लेख किया है। वैसे तो इनका सबध गगा और महाकोशी नदियो से है पर वे वस्तुत कहा थे, यह निश्चित रूप से कह सकना आज कठिन है। गगा-प्रपात वसिष्ठाश्रम के पास ही कही होना चाहिए था जहा कभी पुत्रव्रताचारी राजा दिलीप गोचारण करते थे। वसिष्ठा-श्रम हिमालय की उपत्यका मे ही महाकवि ने स्पष्ट कही रखा है, जो वैसे रामायण की परम्परा से भिन्न है। महाकोशी नेपाल की सप्तकोशियो की सम्मिलित धारा है। उसी प्रपात के तीर शिव, हिमालय की कन्या पार्वती को शिव के लिए गिरिराज से मागने गए, सप्तर्षियो के लौटने की प्रतीक्षा करते है।

हिमालय के गले हिम से ही निकल उत्तरी भारत की प्रधान नदिया नीचे के मैदानो मे उतर आती है। पजाब की पाचो नदियो और सिन्धु का निकास भी हिमालय से ही है। इनमे से कई को पाकिस्तान की धरती धारण करती है। गगा

का उद्गम गगोत्री है। गोमुख द्वार से गिर समूचे मध्यदेश को उर्वर करती ब्रह्मपुत्र को भेटती वह पतितपाविनी गगा-सागर मे लय हो जाती है। जाह्नवी-भागीरथी की यह धारा, पौराणिक प्रसगो की जननी, महान् सभ्यताओ का आदि कारण रही है। यमुना बन्दरपुच्छ के कलिदगिरि से निकल कलिदकन्या नाम सार्थक करती हिमालय का जल प्रयाग तक बहा ले जाती है और वहा, जैसा कवि ने कहा है, श्वेतनील जलपट बुनने मे सहायक होती है। नदियो का वह 'सितासित' सगम देखते ही बनता है। उसी हिमवान से बहकर सरयू कालीनदी का जल लिये अयोध्या को पुनीत करती गगा से जा मिलती है। सरस्वती का उद्गम हिमालय के सिरमूर पहाडो मे है, सिवालिक मे, जहा से आदि बद्री की राह उतर वह मरुभूमि मे खो जाती है। ऋग्वेद का आदि मानव उसे पवित्रतम मान ज्ञान की धारा से अभिन्न कर देता है। फिर जब वह उसे नही भुला पाता तब प्रयाग की त्रिवेणी मे उसे अन्त सलिला कह सम्बोधित करता है। कुरुक्षेत्र के भारत युद्ध के समय बलराम युद्धविरत हो हिमतनया सरस्वती के ही तीर जा बसे थे। गगा की एक धारा मन्दाकिनी भी थी, जिसे हिमालय के ऊचे शिखरो से गिरने के कारण कवियो ने स्वर्गगा भी कहा है। हिमवर्ती प्रदेश मे ही यह अलकनन्दा से जा मिलती है और अलकनन्दा अन्तत गगा से। उसी हिमालय के उत्तरवर्ती छोर मे ब्रह्मपुत्र का उद्गम है जो तिब्बत के पहाडो से होता नेफा की राह अपने ही नाम की घाटी मे उतर आता है। उसी नद के तीर भारत ने पहले-

पहल रेशम के कीडे पाले थे, रेशम के पट बुने थे। उसकी धारा को लोहित प्रात मे प्राची आकाश मे उठने वाली सूर्य की किरणे लाल कर दिया करती थी और उसका नाम 'लौहित्य' (यह व्युत्पत्ति साधारण-भिन्न है) सार्थक हो जाया करता था। और बालारुण की ज्योति का प्रथम दर्शन करने वाले प्राग्ज्योतिष के नागरिको को अनेक बार भारतीय राजाओ ने दण्डविधान से मण्डित किया था। पर्वतराज के उत्तुग हिमावृत शिखरो से निकल पहले जलधाराए शिलाओ पर पतली धार से गिरती है, टूटती-चूर होती मैदानो मे उतर आती है और वहा उनका सिन्धुवत विस्तार हो जाता है।

पुराणो के अनुसार इसी हिमालय मे, इसके मध्यभाग मे अवस्थित, वह अनवतप्त सरोवर है जहा से चार प्रधान नदियो का निकास होता है। सीता अथवा यारकन्द की धारा पामीरो को बेध उत्तर बह जाती है। वक्षुनद (आमू दरिया) पश्चिम, सिन्धु दक्षिण और गगा पूरब की ओर। वक्षु की घाटी हिमालय से मिले पामीरो के ही पश्चिमोत्तरी उतार पर है जहॉ अनेक सभ्यताए फली-फूली और जिसके फरगना-बदख्शा के गीत फिरदौसी ने 'शाहनामा' मे गाये। वक्षु के तीर की क्यारियो मे केसर फूलती है, और एक बार जब वहा के हूणो ने—कालिदास भी कालविरुद्ध दोष से मुक्त नही—भारत की ओर निगाह फेरी तब रघु ने कोजक अमरान पहाडो को बगली दे वक्षु की उस घाटी मे उतर गये थे और अपने रिमाले के घोडो को उन्होने उन्ही कीमती क्यारियो मे विश्राम दिया था, जहा केसर घोडो की सटो मे लिपट उन्हे लाल कर देती थी।

युगो बाद जव 'चन्द्र' ने पजाब की सातो—'तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका.'—नदियो को पार कर बलख के निवासियो वाह्लिको को जीता था तब उस घाटी की याद वह न भुला सका था और उसने महरौली (पृथ्वीराज की दिल्ली) के पास अपना लौह स्तम्भ खडा कर उस पर अपनी इस विजय की प्रशस्ति खुदवा दी थी। भारत की सीमा तब ईरान से टकराती थी, और रघु जब दाख से ढकी ईरानी भूमि (द्राक्षावलयभूमिषु), बोलन का दर्रा लाघ, गिरिश्क जा पहुचे तब ईरानी अश्वारोहियो ने दातो मे तृण दाब मस्तक से पगडी उतार उनकी अभ्यर्थना की थी।

कालिदास का भारत की प्राकृतिक सीमा प्रस्तुत करने का प्रयास कभी इतिहास सम्मत भी था, कुछ कालिदास का अपना नही। तोलेमी ने सिन्धु के पश्चिम के प्रदेशो—बलूचिस्तान और अफगानिस्तान दोनो—को भारतीय सीमा के भीतर गिना था। उधर के सारे प्रदेशनाम मूल मे सस्कृत है और वह समूची भूमि इस्लाम की विजय तक भारतीय राजाओ द्वारा शासित होती थी। यदि तोलेमी द्वारा निर्धारित भारत की पश्चिमी सीमा हम स्पष्ट करना चाहे तो हमे सिधु के मुहाने से बलख तक एक ऐसी रेखा खीचनी होगी जिसके भीतर न केवल कन्दहार, गजनी और काबुल पडेगे बल्कि उनसे भी पश्चिम के प्रदेश, जिससे प्राय समूचा हिन्दूकुश उस रेखा के भीतर आ जायेगा। यदि तोलेमी, हिन्दूकुश और आमू दरिया के उद्गम को भारत की उत्तरी और पश्चिमोत्तरी सीमा मानता है तो शुद्ध राष्ट्रवादी कालिदास उन्हे अपनी सीमा

के भीतर क्यो न माने ? हिमालयवर्ती तब की इस भारत भूमि की परवर्ती सीमा यही आमू दरिया था जिसके अर्द्धचन्द्राकार मोड के पूरब कश्मीर की सीमा पर काराकोरम के उत्तर की दिशा मे बखा है और उसी से लगी पामीरो के चरण मे लोटी वह घाटी है जिसके एक ओर सिन्धु की उपरली धारा है दूसरी ओर आमू और यारकन्द का उद्गम स्रोत। इसी घाटी की राह लोग एक ओर तिब्बत, दूसरी ओर तुर्किस्तान जाते थे। बल्ख से बक्शाब के सगम तक खुत्तल की राह होकर जाते थे और यदि कालिदास के मन मे उधर की किसी राह की सज्ञा थी तो निश्चय रघु ने वही राह ली होगी जो सिकन्दर ने बल्ख तक ली थी और फिर उत्तर-पूर्व घूमकर बदख्शा और बखा की राह कम्बोज की सीमा पर वे जा पहुचे होगे।

आगे का देश निस्सन्देह तब के भारत का न था और रघु दूसरी ओर से लौटने के लिये फिर हिमालय पर चढे। राह मे कश्मीर और बह्लिको के बीच, पर कुछ पूर्वायित, कम्बोज थे, जिन्हे सर करना जरूरी था और कम्बोज चीन की सीमा तक फैले थे, हिमालय के परे। कल्हण ने 'राजतरगिणी' मे कम्बोजो को कश्मीर के उत्तर मे रखा है जिन्हे मुक्तापीड ललितादित्य ने दरदो के साथ अपने प्रताप से झुलस दिया था। रघु पामीरो की ओर से जब यारकन्द की घाटी से होकर कम्बोजो के बीच से निकले तब काराकोरम की श्रृखला सामने थी। उसी का दर्रा लाघ वे गगा की उपरली धारा की ओर निकल गये, बायी ओर, सम्भवत लद्दाख के सिरे-सिरे दरदो के बीच होकर। कुछ अजब नही, जैसा कालिदास के सकेत से प्राय स्पष्ट है,

जो रघु सभवत और पूरब से चले, समूचे लद्दाख को अपनी सोमा मे लेते। और यदि उनका गगा के कणो से बोझिल शीतल वायु से अभितृप्त होना सही हो तो इस अनुमान मे तनिक भी सन्देह नही रह जाता कि उनकी राह हिमालय और लद्दाख के बीच होती, बद्रीनाथ-गगोत्री को लाघती, गगा और यमुना के बीच पहुची होगी, जो कैलाश के निकटवर्ती उल्लेख से स्पष्ट भी हो जाता है। यदि कम्बोज देग बदख्शा का एक भाग और यारकन्द घाटी से लगी गलचा भूमि रहा हो तो तब की भारत की सोमा के भीतर उसका होना सहज जान पडता है। देश अखरोटो से भरा था जिनके तनो से रघु के हाथी बाधे गये थे और उन अच्छे घोडो की जाति आज भी वहा की विशेषता है जो अगणित सख्या मे रघु को भेट किए गए थे। कम्बोजो द्वारा रघु को प्रदत्त रत्न का उल्लेख गलचा भाषी शहर मुन्जान की गोमेद की खानो से सार्थक हो जाता है। इसी गलचाभाषी प्रदेश मे कश्मीर के उत्तर और उत्तरपूर्व कम्बोजो का निवास था, लद्दाख से लगा, कुछ और उत्तरायत जो आज चीन मे है। इन्ही भारतीय कम्बोजो ने कभी कम्बुज अथवा कम्बोदिया मे, भारत-बर्मा के दक्षिण-पूर्वी दिशा मे अपना सास्कृतिक उपनिवेश खडा कर उसे अपना नाम दिया था।

हिमालय की पर्वतमाला मे ही रघु ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर बढते चले गये थे, किरातो, उत्सवसकेतो, किन्नरो की दिशा मे। आरम्भ मे किरात पडते थे, मर-युल (जिसे तिब्बती मध्यकाल मे मरू-पुल अर्थात् 'मक्खन का देश' कहते थे, वही आज लद्दाख कहलाता है) मे कालिदास के किरात निश्चय

लद्दाख, जस्कर और रुप्शू के तिब्बती थे, यद्यपि कुछ अजब नही जो जातिवादी किरात सज्ञा से तात्पर्य दूर तक फैले उन तिब्बती जातियो से भी रहा हो जो कराकोरम और गगा से पूरब कैलाश और मानसरोवर के निकटवर्ती प्रदेश मे रहते रहे हो। भोट और किरात नाम प्राय समानार्थक रूप से पहले प्रयुक्त होते रहे है। भूटान का भारतीय सीमा के अन्तर्गत होना इस प्रकार प्राचीन परपरा की भावभूमि पर खडा है। ग्रीक माभी द्वारा पहली सदी ईसवी मे लिखा पेरिप्लस किरातो को गगा के निकास के पश्चिम और तोलेमी उन्हे टिपरा के निकट रखता है। पर प्राय भारतीय साहित्य मे उत्तरवर्ती किरात हिमालय की समूची शृखला मे, विशेषकर ब्रह्मपुत्र की घाटी मे, बसे बताये गए है। कालिदास के रघु का सम्पर्क उनकी पश्चिमी जातियो से सभवत लद्दाख के आसपास ही हुआ था।

किन्नर किरातो से भिन्न थे और उनका उल्लेख अकसर मानवेतर, यक्षो-गन्धर्वो के साथ हुआ है। सभवत वे कैलाश और मानस के पश्चिम मे बसे थे। सतलज की घाटी मे जहा चन्द्रभागा की धारा निकट आ जाती है वही कही, आधुनिक कनौर के पास, किन्नरो का निवास था। उत्सवसकेतो के प्रति कवि का सकेत सास्कृतिक है। इस सज्ञा से उन जातियो का तात्पर्य है जो सगोत्र सबध करती थी, जिनमे वैवाहिक बधन शिथिल थे, जिनमे 'उत्सव' अर्थात् प्रणय का आधिक्य था और जो 'सकेत' द्वारा अपने प्रियो को बुला लेते थे, अथवा स्वयम् प्रेमातिरेक मे बुलाये जा सकते थे। कन्नौर का प्रदेश आज भी इस प्रक्रिया से सहज समत है।

पूर्व मे कामरूपो का निवास था, आसाम की धरा पर, बर्मा तक, लौहित्य जिसे अपने रस से सीचता था, प्राग्ज्योतिष, गौहाटी, उनकी राजधानी थी ।

हिमालय, प्रकृति का अभिराम आवास, देवताओ की पुनीत भूमि हिन्दूकुश की पश्चिमवर्ती शृखला से जुडा, पामीरो की उन्नत भूमि पर मस्तक धरे, कम्बोज-लद्दाख को अपने अन्तर मे लपेटे, कैलाशवर्ती भूमि से नेफा के समूचे उत्तमाश का परिकर बाधे, बर्मा तक चला गया है । हमारे ऋषियो के ज्ञान का विकासक, नदियो के उपरले स्रोतो का सचारक हिमालय ! क्या हम उस पर पदाघात सह सकेगे ?

१६ संस्कृत कवियों की राष्ट्रीयता-अखण्ड भारत की सीमाएँ

संस्कृत के कवियो की एक विशेषता यह रही है कि उन्होने अपनी रचना का रूप एकागी नही रखा। उन्होने अन्तरग और बहिरग समान रूप से साधे। जिस आस्था से उन्होने अमूर्त भावो का मूर्तन किया उसी आस्था से अपने चतुर्दिक वातावरण को भी अपनी तूलिका से अभिराम चित्रित किया।

वस्तुत उनके प्रकृति और पुरुष अनेक बार अभिन्न हो गए है, मानो एक ही वस्तु पुरुष और प्रकृति के रूप मे सर्वत्र फैली हुई है और कवि रूप मे पुरुष कभी अन्तस्थ हो वैयक्तिक व्यापक चिन्तन करने लगता है। कभी फैले जगत् के प्रति उल्लसित हो व्यापक प्रकृति की अनन्त सुष्मा से मुखर हो उठता है। एक स्थिति दूसरी से परित्यक्त अथवा अभिन्न नही हो पाती, लगता है, जैसे व्यक्ति और प्रकृति एक ही विन्यास के द्विभग हो, एक-दूसरे के न केवल पूरक बल्कि एक-दूसरे मे समाहित।

वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, जयदेव, जगन्नाथ, दण्डी, बाण प्रकृतिभिन्न-मात्र पुरुष की उपलब्धि प्रस्तुत करनेवाले नाट्यकार तक प्रकृति के

वातावरण को अनेकधा अपने वर्णन का अन्तरग बना लेते है। प्रकृति उनसे परे न होकर उनकी अपनी हो जाती है अथवा वे स्वय प्रकृति के अपने हो जाते है। इस प्रकृति का जा विस्तार है वही सस्कृत कवियो की राष्ट्रचेतना का सकेत है। उनकी राष्ट्रीयना उनकी प्रकृति से भिन्न नही, यद्यपि वह प्रकृति भारत के विविध राज्यो की निजी सीमाओ द्वारा परिमित न होकर अपने परिवेश मे समूचे भारत को ममेट लेती है। वस्तुत उनकी राष्ट्रीयता जहा एक ओर राज्यो की एकस्थ शृखला को, उनके सह-अस्तित्व और परिवार को स्वीकार करती है, वही वह भारतेतर प्रान्तो को भी अस्वीकार कर अपनी सीमाए भारत की भौगोलिक सीमाओ से अभिन्न और एकागी कर लेती है। उदाहरण के लिए, कोई भी सम्कृत कवि भारत के वाहर का प्रकृति का वर्णन नही करता, उसकी वर्णन प्रक्रिया उत्तर दिशा मे हिमालय और शेष तीन दिशाओ मे मागर से सीमित हो जाती है। राजनीति मे चाहे सस्कृत कवि अपने-अपने सरक्षक राजाओ के यश को साहित्य मे अमर करे पर निश्चय प्रकृति के विन्यास मे उनकी प्रक्रिया अपने राज्यो की सीमाओ को लॉघ भारत की भौगोलिक सीमाओ से बध जाती है। राष्ट्र तब राज्य से अभिन्न नहीं रह पाता, सक्रमणशील सास्कृतिक राष्ट्र के अनुरूप अपने सभावित विस्तार को देखता है और अखण्ड भारत का भौगोलिक पर्याय बन जाता है। इसी से दाक्षिणात्य दण्डी मध्यभारत अथवा उत्तर की उपेक्षा नही कर पाता, न मध्यदेशीय बाणभट्ट ही अक्षोभ सरोवर की। और वाल्मीकि तथा व्यास तो समूचे भारत को अपनी भारती मे

समाहित कर लेते है, जब कि वाल्मीकि के प्रयास का भूगोल कथा के स्वभाव से ही व्यापक है और व्यास का वैभव तो, वाल्मीकि से भिन्न, सदियो की एकस्थ अनन्तता का परिचायक है। कालिदास का कर्तव्य एकान्तिक है, एक सम्पन्न, प्रचुर और प्रभूत की एकीभूत कविसज्ञा।

कालिदास सहस्राब्दियो की सज्ञा स्वायत्त कर मुखरित होता है, अनन्त को एकत्र देखता है, देश और काल की प्रवह-मान गति को जैसे अपने कृतित्व मे सकेन्द्रित कर क्षण-भर के लिए रोक लेता है। सयम और सुरुचि बहुलता को बेढब नही होने देते और वास्तुकार की मेधा से, शिल्पी के तक्षण से, वह अपने परिष्कृत सौकुमार्य द्वारा कृतित्व मे समा लेता है। फिर जैसे जादूगरी के माध्यम से हो, ज्ञान और विज्ञान, धर्म और दर्शन, साहित्य और कला, अर्थ और राजनीति आवश्यकता-नुसार भावोद्गीरित यत्रवत् यथेच्छ झरने लगते है। पर वह भारतीय कवियो का मूल सत्य कालिदास के सबध मे भी सही हो जाता है, कि वह महाकवि भी भारत की सीमाओ के बाहर नही जाता, कम से कम सास्कृतिक अथवा स्वीकृत सीमाओ के बाहर नही, यद्यपि उसके लम्बकुर्च का लम्बायित सन्दर्भ असाधारण बडा है और उसकी तूलिका का 'स्वीप' कैनवस के असाधारण विस्तार पर सहसा फैल जाता है।

कालिदास के 'स्वीप' का जरा अन्दाज कीजिए—'रघुवश' के आर्यावर्त से चलनेवाली सेना का अभियान-सक्रमण जिसकी परिधि मे पूर्वसागरगामिनी दिशा के सुह्म, उत्कल, आन्ध्र, कावेरिपर्यन्त मद्रास, दक्षिणवर्ती दर्दुर, मलय, केरल, पाश्चात्य

वातावरण को अनेकधा अपने वर्णन का अन्तरग बना लेते है। प्रकृति उनसे परे न होकर उनकी अपनी हो जाती है अथवा वे स्वय प्रकृति के अपने हो जाते है। इस प्रकृनि का जा विस्तार है वही सस्कृत कवियो की राष्ट्रचेतना का सकेत है। उनकी राष्ट्रीयता उनकी प्रकृति से भिन्न नही, यद्यपि वह प्रकृति भारत के विविध राज्यो की निजी सीमाओ द्वारा परिमित न होकर अपने परिवेश मे समूचे भारत को समेट लेती है। वस्तुत उनकी राष्ट्रीयता जहा एक ओर राज्यो की एकस्थ शृखला को, उनके सह-अस्तित्व और परिवार को स्वीकार करती है, वही वह भारतेतर प्रान्तो को भी अस्वीकार कर अपनी सीमाए भारत की भौगोलिक सीमाओ मे अभिन्न और एकागी कर लेती है। उदाहरण के लिए, कोई भी सस्कृत कवि भारत के बाहर का प्रकृति का वर्णन नही करता, उसकी वर्णन प्रक्रिया उत्तर दिशा मे हिमालय और शेष तीन दिशाओ मे सागर से सीमित हो जाती है। राजनीति मे चाहे सस्कृत कवि अपने-अपने सरक्षक राजाओ के यश को साहित्य मे अमर करे पर निश्चय प्रकृति के विन्यास मे उनकी प्रक्रिया अपने राज्यो की सीमाओ को लॉघ भारत की भौगोलिक सीमाओ से बध जाती है। राष्ट्र तब राज्य से अभिन्न नही रह पाता, सक्रमणशील सास्कृतिक राष्ट्र के अनुरूप अपने सभावित विस्तार को देखता है और अखण्ड भारत का भौगोलिक पर्याय बन जाता है। इसी से दाक्षिणात्य दण्डी मध्यभारत अथवा उत्तर की उपेक्षा नही कर पाता, न मध्यदेशीय बाणभट्ट ही अक्षोभ सरोवर की। और वाल्मीकि तथा व्यास तो समूचे भारत को अपनी भारती मे

समाहित कर लेते है, जब कि वाल्मीकि के प्रयास का भूगोल कथा के स्वभाव से ही व्यापक है और व्यास का वैभव तो, वाल्मीकि से भिन्न, सदियो की एकस्थ अनन्तता का परिचायक है। कालिदास का कर्तव्य एकान्तिक है, एक सम्पन्न, प्रचुर और प्रभूत की एकीभूत कविसज्ञा।

कालिदास सहस्राब्दियो की सज्ञा स्वायत्त कर मुखरित होता है, अनन्त को एकत्र देखता है, देश और काल की प्रवह-मान गति को जैसे अपने कृतित्व मे सकेन्द्रित कर क्षण-भर के लिए रोक लेता है। सयम और सुरुचि बहुलता को बेढब नही होने देते और वास्तुकार की मेधा से, शिल्पी के तक्षण से, वह अपने परिष्कृत सौकुमार्य द्वारा कृतित्व मे समा लेता है। फिर जैसे जादूगरी के माध्यम से हो, ज्ञान और विज्ञान, धर्म और दर्शन, साहित्य और कला, अर्थ और राजनीति आवश्यकता-नुसार भावोद्गीरित यत्रवत् यथेच्छ झरने लगते है। पर वह भारतीय कवियो का मूल सत्य कालिदास के सबध मे भी सही हो जाता है, कि वह महाकवि भी भारत की सीमाओ के बाहर नही जाता, कम से कम सास्कृतिक अथवा स्वीकृत सीमाओ के बाहर नही, यद्यपि उसके लम्बकुर्च का लम्बायित सन्दर्भ असाधारण बडा है और उसकी तूलिका का 'स्वीप' केनवस के असाधारण विस्तार पर सहसा फैल जाता है।

कालिदास के 'स्वीप' का जरा अन्दाज कीजिए—'रघुवश' के आर्यावर्त से चलनेवाली सेना का अभियान-सक्रमण जिसकी परिधि मे पूर्वसागरगामिनी दिशा के सुह्म, उत्कल, आन्ध्र, कावेरिपर्यन्त मद्रास, दक्षिणवर्ती दर्दुर, मलय, केरल, पाश्चात्य

अपरान्त और सह्य, फिर उत्तरवर्ती मरुभूमि, पारसीक, वक्ष घाटी के वह्लीक और हूण, हिमालय के कम्बोज, किन्नर और दरद कैलास, लौहित्य और प्राग्ज्योतिष सभी आ जाते है। दूसरी परिगणना मे, वर्णन की राजनीतिक प्रक्रिया मे रघुवश के मात्र एक सर्ग (छठा) के केवल एक सन्दर्भ इन्दुमती के स्वयवर मे समूचे भारत के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक के राज्य-परिवार एकत्र गिन लिये जाते है। तीसरी ओर लका से अयोध्या तक के अनेकानेक स्थल दक्षिण सागर और सरयू की धारा के बीच, लालसासिवत राम की वाणी मे मदिर सस्मरणो के सदर्भ मे उछल पडते है। 'मेघदूत' का 'स्वीप' तो नागपुर के पास रामटेक से उठता है और उत्तरवर्ती समूचे मध्यप्रदेश, समूचे मध्यदेश और ब्रह्मावर्त पार कैलासपर्यन्त नगनदी, कान्तारजनपद घेर लेता है। कैनवस का यह विस्तार भारतीय सीमा के अन्तर्गत स्वय नि सीम हे, पर कवि की दो कृतियाँ ऐसी भी है जहाँ वह क्षण को अनन्त मे और परिमित को नि सीम मे लम्बायित कर देता है। 'कुमारसम्भव' मात्र हिमालय को सकेन्द्रित कर सूक्ष्म को विस्तार में देखने का प्रयत्न है, जैसे 'ऋतुसहार' क्षण मे समूचे वर्ष को देखने का प्रयत्न।

'कुमारसम्भव' और 'ऋतुसहार' मे, अभिराम तथा विचक्षण के अतिरिक्त, एक विशेष अन्तर देश और काल का है। 'कुमारसम्भव' मे परिमित प्रदेश की विस्तृत भावरागासक्त गरिमा अभिव्यक्त हुई है, 'ऋतुसहार' मे समस्त काल को पठनीय क्षण मे रोपा गया है। न 'कुमारसभव' का अभिराम

उत्तुग - गरिम वैभव मध्यप्रदेश की सीमाओ मे समा सकता था और न 'ऋतुसहार' की षड्ऋतुओ के सक्रमणशील सौन्दर्य का निरूपण नगाधिराज की हिमभूमि मे सभव हो पाता। हिमालय मे उसी प्रकार षड्ऋतुएँ नही होती जिस प्रकार यूरोप आदि के शीत-प्रधान देशो मे नही होती। वैसे कुछ सप्ताह वहाँ वसत भी होता है, कुछ सप्ताह ग्रीष्म भी, पर शीत कम-बेश वहाँ बराबर बना रहता है और वर्षा का तो कोई समुचित नियम ही नही। इस दृष्टि से ऋतुओ का सही परिघटन भारत के अन्तरग मे ही सभव है, और कालिदास ने उचित ही उसके लिए मध्यप्रदेश को चुना, जहाँ मानव वातावरणीय प्रक्रिया को पूर्णत बदलते जानेवाली ऋतुओ का आनुक्रमिक सक्रमण देखता और झेलता है।

कालिदास की राष्ट्रीयता इन सब क्षणो, घडियो, मासो और ऋतुओ की, गावो, नगरो, जनपदो और राज्यो की भावात्मक एकता प्रस्तुत करती है। अभिराम सुषमा और रागाकन की प्रक्रिया तो कविकर्म है, कवि के सकल्प का अनिवार्य आधार और आदिबिन्दु। जो कवि लेखनी उठाता है उसके अनिवार्य आवश्यक ये 'प्रस्थानद्वयी' है। पर वर्ण्यतथ्य कवि की सचयित प्रक्रिया है जिसमे उसके दृष्टिकोण तथा जीवन के अभिप्रेत निर्दिष्ट होते है। कालिदास का समूचा वर्ण्य राष्ट्रीयता की समान सज्ञा प्रस्तुत करता है, जो इस प्रकार है।

अखण्ड भारत की भौगोलिक भावसत्ता की दिशा मे कवि के समन्वित अभिप्रेत के प्रति ऊपर सकेत किया जा चुका है। कवि का भौगोलिक विन्यास द्विधा है, जड और चेतन, दोनो

अपरान्त और सह्य, फिर उत्तरवर्ती मरुभूमि, पारसीक, वक्ष घाटी के वह्लीक और हूण, हिमालय के कम्बोज, किन्नर और दरद कैलास, लौहित्य और प्राग्ज्योतिष सभी आ जाते है। दूसरी परिगणना मे, वर्णन की राजनीतिक प्रक्रिया मे रघुवश के मात्र एक सर्ग (छठा) के केवल एक सन्दर्भ इन्दुमती के स्वयवर मे समूचे भारत के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक के राज्य-परिवार एकत्र गिन लिये जाते है। तीसरी ओर लका से अयोध्या तक के अनेकानेक स्थल दक्षिण सागर और सरयू की धारा के बीच, लालसासिक्त राम की वाणी मे मदिर सस्मरणो के सदर्भ मे उछल पडते है। 'मेघदूत' का 'स्वीप' तो नागपुर के पास रामटेक से उठता है और उत्तरवर्ती समूचे मध्यप्रदेश, समूचे मध्यदेश और ब्रह्मावर्त पार कैलासपर्यन्त नगनदी, कान्तारजनपद घेर लेता है। कैनवस का यह विस्तार भारतीय सीमा के अन्तर्गत स्वय नि सीम है, पर कवि की दो कृतियाँ ऐसी भी है जहाँ वह क्षण को अनन्त मे और परिमित को नि सीम मे लम्बायित कर देता है। 'कुमारसम्भव' मात्र हिमालय को सकेन्द्रित कर सूक्ष्म को विस्तार मे देखने का प्रयत्न है, जैसे 'ऋतुसहार' क्षण मे समूचे वर्ष को देखने का प्रयत्न।

'कुमारसम्भव' और 'ऋतुसहार' मे, अभिराम तथा विचक्षण के अतिरिक्त, एक विशेप अन्तर देश और काल का है। 'कुमारसम्भव' मे परिमित प्रदेश की विस्तृत भावरागासक्त गरिमा अभिव्यक्त हुई है, 'ऋतुसहार' मे समस्त काल को पठनीय क्षण मे रोपा गया है। न 'कुमारसभव' का अभिराम

उत्तुग - गरिम वैभव मध्यप्रदेश की सीमाओ मे समा सकता था और न 'ऋतुसहार' की षड्ऋतुओ के सक्रमणशील सौन्दर्य का निरूपण नगाधिराज की हिमभूमि मे सभव हो पाता। हिमालय मे उसी प्रकार षड्ऋतुएँ नही होती जिस प्रकार यूरोप आदि के शीत-प्रधान देशो मे नही होती। वैसे कुछ सप्ताह वहाँ वसत भी होता है, कुछ सप्ताह ग्रीष्म भी, पर शीत कम-बेश वहाँ बराबर बना रहता है और वर्षा का तो कोई समुचित नियम ही नही। इस दृष्टि से ऋतुओ का सही परिघटन भारत के अन्तरग मे ही सभव हे, और कालिदास ने उचित ही उसके लिए मध्यप्रदेश को चुना, जहाँ मानव वातावरणीय प्रक्रिया को पूर्णत बदलते जानेवाली ऋतुओ का आनुक्रमिक सक्रमण देखता और झेलता है।

कालिदास की राष्ट्रीयता इन सब क्षणो, घडियो, मासो और ऋतुओ की, गावो, नगरो, जनपदो और राज्यो की भावात्मक एकता प्रस्तुत करती है। अभिराम सुषमा और रागाकन की प्रक्रिया तो कविकर्म है, कवि के सकल्प का अनिवार्य आधार और आदिविन्दु। जो कवि लेखनी उठाता है उसके अनिवार्य आवश्यक ये 'प्रस्थानद्वयी' है। पर वर्ण्यतथ्य कवि की सचयित प्रक्रिया है जिसमे उसके दृष्टिकोण तथा जीवन के अभिप्रेत निर्दिष्ट होते है। कालिदास का समूचा वर्ण्य राष्ट्रीयता की समान सज्ञा प्रस्तुत करता है, जो इस प्रकार है।

अखण्ड भारत की भौगोलिक भावसत्ता की दिशा मे कवि के समन्वित अभिप्रेत के प्रति ऊपर सकेत किया जा चुका है। कवि का भोगोलिक विन्यास द्विधा है, जड और चेतन, दोनो

को समेट लेनेवाला। उसकी कृतियो मे प्रदेशो, जनपदो, नगरो, वनप्रान्तरो, नदियो, प्रपातो, पर्वतो, समुद्रो आदि का जो विराट् और नि शेष वर्णन हुआ है उनसे शुद्ध भारतीय भूगोल का महाग्रन्थ बन सकता है। ऐसी-ऐसी जलधाराओ का कवि की कृतियो मे निर्देश हुआ है कि भूगोलवेत्ताओ को भी उनके सबध मे खोज की आवश्यकता पड जाती है और वह खोज उनके ग्रथ का आधार बनती है।

चेतन के परिवेश मे दूर्वा से अश्वत्थ तक, शलभ से गरुड तक, इन्द्रगोप से शेषनाग तक, चीटी से गजेन्द्र ऐरावत तक, मर्कट से मानव तक, मेढक से जलहस्ती और ह्वेल तक, सभी अपने स्थान पर अपना उल्लेख अनिवार्य पा जाते है। और कही-कही तो यह सन्दर्भ इतना व्यापक हो उठा है, गागर मे सागर से कही व्यापक, कि सारा जगत् श्लोकार्ध मे सन्निविष्ट हो गया है। उदाहरणत सन्दर्भ ले, एक शिव की समाधि का। समाधि-भूमि के द्वार मार्ग की रक्षा शिव का गणप्रवर नन्दी द्वारपाल की मुद्रा मे अधिकार सूचक वेत्रयष्टि को वामस्कन्ध पर टिकाये खडा, कही शिव की समाधि भग न हो जाय इसलिए, होठो पर उगली रखे चराचर को जैसे सकेत से चित्रार्पित आकृतियो की भाँति निस्पद हो जाने के लिए सावधान करता है—मा चापलाय—खबरदार, कोई हिले-डुले नही! और उस सन्दर्भ मे जो कालिदास ने समस्त चराचर को अपने सूक्ष्म विलेखन द्वारा निर्दिष्ट कर दिया है उसका 'स्वीप' ससार के साहित्य मे अजाना है—

'निस्पदवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।'

भौगोलिक सपदा की अभिव्यक्ति कवि का, उसके अभिराम अकन के बावजूद, स्थूल कार्य है, आकार का निरूपण, पिण्ड की तन्मध्य सत्ता का मूर्तन। और वह ऐसा है जैसा कवि अपने चाक्षुष प्रयत्न से देख पाता है, जैसा वह उसे हृदयगम कर रागसिक्त-आकलित कर पाता है। सूक्ष्म यद्यपि इससे सर्वथा परे नही—क्योकि सूक्ष्म स्थूल का ही सूक्ष्मीभूत रूप है—है वह आप्त तत्व, कवि का आप्त तत्व जितना हो सकता है। कवि का आप्त तत्व इतना सृजन मे नही जितना उसके नवसधान मे है, नवनिरूपण मे, नवीकरण मे, वैयक्तिक, सचेत, आत्म-निष्ठ, समाजनिष्ठ सग्रहण मे। समाज द्वारा सदियो के काल-प्रसार मे निर्मित ज्ञान-विज्ञान को जिस मात्रा मे कवि अपने व्यक्तित्व के विकार से, उसके सयम और उल्लास मे, अगीकृत, नवीकृत कर अपने से अभिन्न कर लेता है, उसी मात्रा मे वह अपने अक्षय राष्ट्र की सक्रमणशील, देश और काल के परिमाण मे अपरिमित, राष्ट्रीयता का परिचायक होता है। सदियो के भारतीय समाज के अर्थ और राजनीति, साहित्य और कला, दर्शन और धर्म, विश्वास और मान्यताओ, सक्षेपत समूचे ज्ञान-विज्ञान को जिस मात्रा मे कालिदास ने हृदयगत कर उसका उद्गिरण किया है उस मात्रा मे अन्य किसी कवि ने नही किया, और उसी मात्रा मे राष्ट्र की राष्ट्रीयता कालिदास मे सन्निहित हुई है।

राजधर्म, प्रजाधर्म, राजा का काल का कारण होकर भी दिनचर्या के कालक्रमण द्वारा कर्तव्य के प्रति जागरूक और सयमित होना, उसके तत्त्वो का प्रजारजन धर्म से निर्मित होना,

को समेट लेनेवाला। उसकी कृतियो मे प्रदेशो, जनपदो, नगरो, वनप्रान्तरो, नदियो, प्रपातो, पर्वतो, समुद्रो आदि का जो विराट् और नि शेष वर्णन हुआ है उनसे शुद्ध भारतीय भूगोल का महाग्रन्थ बन सकता है। ऐसी-ऐसी जलधाराओ का कवि की कृतियो मे निर्देश हुआ है कि भूगोलवेत्ताओ को भी उनके सबध मे खोज की आवश्यकता पड जाती है और वह खोज उनके ग्रथ का आधार बनती है।

चेतन के परिवेश मे दूर्वा से अश्वत्थ तक, शलभ से गरुड तक, इन्द्रगोप से शेषनाग तक, चीटी से गजेन्द्र ऐरावत तक, मर्कट से मानव तक, मेढक से जलहस्ती और ह्वेल तक, सभी अपने स्थान पर अपना उल्लेख अनिवार्य पा जाते है। और कही-कही तो यह सन्दर्भ इतना व्यापक हो उठा है, गागर में सागर से कही व्यापक, कि सारा जगत् श्लोकार्ध मे सन्निविष्ट हो गया है। उदाहरणत सन्दर्भ ले, एक शिव की समाधि का। समाधि-भूमि के द्वार मार्ग की रक्षा शिव का गणप्रवर नन्दी द्वारपाल की मुद्रा मे अधिकार सूचक वेत्रयष्टि को वामस्कन्ध पर टिकाये खडा, कही शिव की समाधि भग न हो जाय इसलिए, होठो पर उगली रखे चराचर को जैसे सकेत से चित्रार्पित आकृतियो की भाँति निस्पद हो जाने के लिए सावधान करता है—मा चापलाय—खबरदार, कोई हिले-डुले नही ! और उस सन्दर्भ मे जो कालिदास ने समस्त चराचर को अपने सूक्ष्म विलेखन द्वारा निर्दिष्ट कर दिया है उसका 'स्वीप' ससार के साहित्य मे अजाना है—

'निस्पदवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम् ।'

भौगोलिक सपदा की अभिव्यक्ति कवि का, उसके अभिराम अकन के बावजूद, स्थूल कार्य है, आकार का निरूपण, पिण्ड की तन्मध्य सत्ता का मूर्तन। और वह ऐसा है जैसा कवि अपने चाक्षुष प्रयत्न से देख पाता है, जैसा वह उसे हृदयगम कर रागसिक्त-आकलित कर पाता है। सूक्ष्म यद्यपि इससे सर्वथा परे नही—क्योकि सूक्ष्म स्थूल का ही सूक्ष्मीभूत रूप है—है वह आप्त तत्व, कवि का आप्त तत्व जितना हो सकता है। कवि का आप्त तत्व इतना सृजन मे नही जितना उसके नवसधान मे है, नवनिरूपण मे, नवीकरण मे, वैयक्तिक, सचेत, आत्मनिष्ठ, समाजनिष्ठ सग्रहण मे। समाज द्वारा सदियो के काल-प्रसार मे निर्मित ज्ञान-विज्ञान को जिस मात्रा मे कवि अपने व्यक्तितत्व के विकार से, उसके सयम और उल्लास से, अगीकृत, नवीकृत कर अपने से अभिन्न कर लेता है, उसी मात्रा मे वह अपने अक्षय राष्ट्र की सक्रमणशील, देश और काल के परिमाण मे अपरिमित, राष्ट्रीयता का परिचायक होता है। सदियो के भारतीय समाज के अर्थ और राजनीति, साहित्य और कला, दर्शन और धर्म, विश्वास और मान्यताओ, सक्षेपत समूचे ज्ञान-विज्ञान को जिस मात्रा मे कालिदास ने हृदयगत कर उसका उद्गिरण किया है उस मात्रा मे अन्य किसी कवि ने नही किया, और उसी मात्रा मे राष्ट्र की राष्ट्रीयता कालिदास मे सन्निहित हुई है।

राजधर्म, प्रजाधर्म, राजा का काल का कारण होकर भी दिनचर्या के कालक्रमण द्वारा कर्तव्य के प्रति जागरूक और सयमित होना, उसके तत्त्वो का प्रजारजन धर्म से निर्मित होना,

नवजात के जन्म से ही उसके पिता का पितृकर्म स्वीकार कर लेना, प्रजा के पालन मे 'क्षत' से त्राण कर 'क्षत्रिय' शब्द की व्युत्पत्ति को सार्थक करना, धर्मासिन अथवा व्यवहार आसन पर बैठ सूर्य और पवन की भाति तपशील और अथक आचरण करना, राजशास्त्र के अनुसार अभियान, द्वैधीभाव, उत्साह आदि का शास्त्रगत, परम्परागत अधिनिवेश कालिदास के ग्रथो मे नि शेष रूप मे कुछ ऐसा हुआ है कि जैसे उशना और भरद्वाज, कौटिल्य और कामन्दक के राजदर्शन व्यवहार मे उपयुक्त हो उठे हो। यह उसकी राष्ट्रीय दृष्टि तथा राज-परम्परा के प्रति उसके निरत सकल्प और आस्था का द्योतक है।

स्वदेश की अर्थनीति द्वारा अभिसृष्ट, सचालित और सयमित सम्पदा का अनन्त परिस्थितियो—सेतुबन्ध, आकर-खनन, वार्ता, कृषि, आयात-निर्यात, जल-थल वाणिज्य, विविध वणिक्-पथ, अनवरत सार्थवाहकर्म, अनन्त धातुओ, रत्नो, वाणिज्य-सबधी वस्तुओ, व्यवसायो आदि—मे जो वर्णन कवि ने किया है वह अनन्त व्यापक है। उसके रागात्मक आकडे प्राचीन बाबुली अथवा फिनीकी तालिकाओ या 'इरिथ्रियन सागर के पेरिप्लस' जैसी विक्रयवस्तु-सूचियो से कम महत्त्व अथवा सख्या के नही।

ललित कला का रागाकन तो कालिदास का अपना है जिसमे कवि से सदियो पूर्व के कालप्रसार की कला कल्पना, भारतीय सगीत तथा तूलिका से प्रादुर्भूत समूची रागात्मक विधाएँ एकत्र जग उठी है। लोक तथा शास्त्रीय (मार्ग) गायन, वेणु से वीणा तक विकसित होनेवाले विविध प्रकार

नवजात के जन्म से ही उसके पिता का पितृकर्म स्वीकार कर लेना, प्रजा के पालन मे 'क्षत' से त्राण कर 'क्षत्रिय' शब्द की व्युत्पत्ति को सार्थक करना, धर्मासन अथवा व्यवहार आसन पर बैठ सूर्य और पवन की भाति तपशील और अथक आचरण करना, राजशास्त्र के अनुसार अभियान, द्वैधीभाव, उत्साह आदि का शास्त्रगत, परम्परागत अधिनिवेश कालिदास के ग्रथो मे नि शेष रूप मे कुछ ऐसा हुआ है कि जैसे उशना और भरद्वाज, कौटिल्य और कामन्दक के राजदर्शन व्यवहार मे उपयुक्त हो उठे हो। यह उसकी राष्ट्रीय दृष्टि तथा राज-परम्परा के प्रति उसके निरत सकल्प और आस्था का द्योतक है।

स्वदेश की अर्थनीति द्वारा अभिसृष्ट, सचालित और नियमित सम्पदा का अनन्त परिस्थितियो—सेतुबन्ध, आकर-खनन, वार्ता, कृषि, आयात-निर्यात, जल-थल वाणिज्य, विविध वणिक्-पथ, अनवरत सार्थवाहकर्म, अनन्त धातुओ, रत्नो, वाणिज्य-सबधी वस्तुओ, व्यवसायो आदि—मे जो वर्णन कवि ने किया है वह अनन्त व्यापक है। उसके रागात्मक आकडे प्राचीन बाबुली अथवा फिनीकी तालिकाओ या 'इरिथ्रियन सागर के पेरिप्लस' जैसी विक्रयवस्तु-सूचियो से कम महत्त्व अथवा सख्या के नही।

ललित कला का रागाकन तो कालिदास का अपना है जिसमे कवि से सदियो पूर्व के कालप्रसार की कला कल्पना, भारतीय सगीत तथा तूलिका से प्रादुर्भूत समूची रागात्मक विधाएँ एकत्र जग उठी है। लोक तथा शास्त्रीय (मार्ग) गायन, वेणु से वीणा तक विकसित होनेवाले विविध प्रकार

के वादन, रग अथवा नाट्य की विधा अथवा विविध भाव-भगिमाओ और मुद्राओ से प्रस्तुत होनेवाले नर्तन, भरत से कालिदास तक, जिस सम्मोहक रूप मे कवि ने अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किए है वे तद्विषयक राष्ट्रीय विकास के एकान्तिक प्रमाण है। उनका रागात्मक अभिनिवेश जिस अधिकार से, जिस सयम, अनाकुल विधि से कवि की कृतियो मे आकलित हुआ है—सिप्रावर्तिनी उज्जयिनी की नारी के भृकुटिविक्षेप से शिव के गन्धमादनपर्यंत रीतक्षेम तक—उससे यह अटकल लगाना कठिन हो जाता है कि वर्णित प्रसगो का आचार्य कालिदास है या वात्स्यायन।

काव्य—श्रव्य तथा दृश्य—जितना पूर्ववर्ती राष्ट्र की धरोहर है, उससे कही अधिक साहित्य-भिन्न, सगीत-भिन्न, कलाओ की कालपरिणीत सपदा राष्ट्र द्वारा विकसित राष्ट्रीय है। कालिदास ने राग और रेखा के आधार से उठनेवाले अकनो का जो विकसित चित्रण किया है वह समूचे राष्ट्रगत तद्विषयक अभियान की चोटी छू लेता है और अजन्ता, बाघ, सित्तनवसल आदि राष्ट्रीय चित्र गैलरियो की साहित्यगत सूचना प्रस्तुत कर देता है। उसकी एकनिष्ठा विविध प्रदेशो की एकान्वित स्थिति सूचित करती है, दूसरी सैन्धव सभ्यता से आरभ होकर मौर्यकाल से देशी-विदेशी दाय को अनवरत समाहित कर कालिदास-पर्यंत विकसित होनेवाली सिद्धि को प्रमाणित करती है। वास्तुशिल्प के विकास की प्रक्रिया न केवल कविनिर्दिष्ट शिल्पसघो की क्रिया द्वारा उपमित है, बल्कि उस विकास के अनेकानेक विरामचिह्न भी कवि ने अपनी

कृतियो मे दे दिए है। पुराणो के नये देव-वर्गों के अभिजात मूर्तन, विविध प्रभामण्डलो के विकसित अभिप्रेत, मकरस्थित गगा और कमठारूढ यमुना के कलश-चँवरधारी प्रतीक, उस विकास मे उसी प्रकार के विरामचिह्न है जिस प्रकार के विराम कुषाणो और गुप्तो के बीच के वे अभिप्राय है जो रेलिगो की यक्षी कायाओ मे अभिमूर्त हुए है। प्रगट है कि राष्ट्रचेता वह कवि ही परित्यक्ता अयोध्या की विरहित स्थिति का वर्णन दूर की कुशावती मे राजा कुश से कर सकता था जिसने कुषाणकालीन मथुरा के जैनस्तम्भो पर उभारी यक्षियो की वह राष्ट्रीय निधि प्रत्यक्ष देखी हो और कला के उस अभिमत विकास को राष्ट्रीय रूप से स्वीकार किया हो। अयोध्या को राज्यलक्ष्मी प्रवासी राजा कुश से कहती है—राजन्, अयोध्या के राजप्रासाद को घेरनेवाली रेलिगो की स्तम्भ-नारियो के रग जो सालो की धूल से मिट गये है सो उनके स्तनो को ढकनेवाले कचुको का अभाव हो गया है और अब उनका उध्वार्ध रागपट्ट से आवृत नही होता, उन केंचुलो से होता है जो उनके कभी के कमनीय उष्ण, तन पर रेगनेवाले सर्प छोड जाते है।

कालिदास के तात्कालिक साहित्य तथा ज्ञान की ही भाति समाज के स्वरूप का भी उनकी कृतियो मे सागोपाग वर्णन हुआ है। उनके दर्पण मे वह समाज अपने उच्चावच रूप मे इस प्रकार प्रतिबिम्बित हुआ है कि राष्ट्र का सर्वागीण रूप प्रत्यक्ष उतर आया है। वर्णों के आभ्यन्तर तथा वाह्य और पारस्परिक सबध, उनके निजी सस्कार, व्यवहार और कर्तव्य

उनकी विभिन्न स्थितियाँ, रोगदोष, नैतिक-अनैतिक व्यापार, वस्तुत समूची राष्ट्रसत्ता को, जैसे पारदर्शी यत्र के प्रभाव से, सजय के दिव्य चक्षु से, विगत और सप्रति के सान्निध्य से कवि ने डेढ हजार वर्ष बाद के आज के भारतीय राष्ट्र को भी उपलब्ध कर दिया है।

धर्मप्राण हिन्दू की मूर्तिपूजक निष्ठा, उसके व्यापक विश्वास-अविश्वास, यवनो, शको, कुषाणो द्वारा प्रारम्भित, पालित, विकसित विज्ञान, ज्योतिष की परम्पराएँ जिस सीमा तक राष्ट्रसम्मत होकर कवि-क्रिया मे अभिनिविष्ठ मूर्तिवत प्रकट हो गई है वह कालिदास के पाठक का अभिमत सत्य है। दर्शन के विभिन्न सप्रदायो का जितना स्वाभाविक और सहज वर्णन कालिदास ने किया है, श्रीहर्ष के एकान्तिक दार्शनिक ज्ञान के बावजूद, उसका स्पृहणीय है। भारतीय राष्ट्र के दार्शनिक चिन्तन का कौन-सा योग-विनियोग है जो कालिदास के स्पर्श से अछूता रह गया है ?

होमर का 'इलियद' तब के एकियाई-दोरियाई ग्रीक आर्यों के मात्र एक भग को प्रत्यक्ष करता है, यद्यपि तत्कालीन ग्रीक जगत् को एक अश तक वह निश्चय व्यक्त भी करता है। पर कालिदास के मुकाबिले उस कवि का ससार कितना हेय लगता है, कितना उपेक्षित ! होमर अपने शत्रुओ के उस जगत् की ओर समुचित सकेत तक नही कर पाता जो ईजियाई सभ्यता का कभी समृद्ध केन्द्र रहा था। कालिदास की सचेत राष्ट्रीयता विभिन्न अभिनव को, समागत सप्रति को, परपरागत सावधि को इस रूप से अपनी कृतियो के माध्यम

से अभिव्यक्त करती है कि सहस्राब्दियो का राष्ट्र अपनी समूची प्रक्रियाओ द्वारा आज भी हमारी आँखो के सामने आ खडा होता है। कारण कि कालिदास की राष्ट्रीयता समूचे राष्ट्र से सर्वथा अभिन्न है, कारण कि कालिदास राष्ट्र के साथ एकीभूत हो गया है, काल और देश से स्वतत्र, तथापि समूचे भारत की वास्तविक और काल्पनिक सीमाओ से अभिसीमित।

१७ | अजेय राष्ट्रभावना

महते जानराज्याय !—प्राचीन ऋषियो का यह राष्ट्र के प्रति अभिनन्दन है—महान् जनराज्य को प्रणाम ! इसी निष्ठा से हमारा भारतीय राष्ट्र सन, ४७ मे अपने जन्म के बाद राष्ट्र-वादियो द्वारा अभिनदित हुआ है, सतत अभिनन्दनीय है ।

भारत की राष्ट्रभावना अजेय है। कारण कि इसकी निर्माता शक्तिया अनेक है। इसकी विविधता, असाधारण विविध एकता ही इसकी अजेय शक्ति है। वैदिक वाक्य है—

'जन विभ्रती बहुधा विवाचस
नाना धर्माण पृथिवी यथौकसम् ।'

भारतीय वसुधा का परिवार जनसकुल है, अनेक जातिया वह धारण करती है, उन्हे आहार देती है। भारत की भाषाए अनेक है, बोलिया अनत हैं, उसके जनो के धर्म असख्य है। पर इसको धारण करनेवाली धरती एक है, सबका मातृत्व समान है। अपने इन्ही अनत जनो से, अनत पुत्रो से यह भूमाता शक्तिमती हुई है, जैसे इन्द्रादियो से अदिति । इन्ही अनत भाषाओ बोलियो के कारण वह सहस्रजिह्वा बनती है, मधु-वर्षिणी शारदा । धर्मो की अनेकता, उसकी विविध सस्कृतियो की जननी है, सप्रदायो की विविधता की जननी, जिससे उनके

भिन्न-भिन्न अनुयायी, अपने भिन्नबोध के बावजूद, परस्पर सहिष्णु जीवन बिता सके, जिससे अनत सस्कृतियो के सयोग की सम्पदा, उनके अतरावलबन की एकत्र शक्ति भारत वसुन्धरा की हो सके ।

जबसे हमारे इस नवराष्ट्र का जन्म हुआ है, जब से हमने इसकी स्वतत्र सीमाओ मे स्वच्छन्द विचरण किया है, हमारी प्राचीनतम अजेय राष्ट्रीयता तब से लौट आई है, स्मृतिलब्ध हुई है । सिकन्दर के प्रति आत्मसमर्पण को चुनौती देनेवाले कठो की, ग्रीक साम्राज्य के विद्रोही सिन्धी मुषिको के उन ऋषियो की जिन्होने अपने निर्भीक और व्यग्यप्रखर उत्तरो से उस विश्वविजेता को हास्यास्पद कर दिया था, कालिदास के रघु की जिसने ईरानी कोजक अमरान के पहाडो को बगली दे बलख़-बदख्शाँ मे आमू दरिया के तीर की केसर की क्यारियो मे अपने रिसालो के घोडे हिराए थे, अखरोटो से भरे वखाँ के मैदानो मे कम्बोजो को धूल चटा मक्खन के देश मर-युल-लद्दाख़ के उतरौहे पूरब-पूरब भोटो-किरातो को भूलुठित कर गगा की उपरली धारा की नीहारिकाओ से बोझिल शीतल वायु से थकान मिटाई थी । स्मृतियो की शृखला अटूट है—अर्जुन की उत्तर-विजय की, नेफा से बर्मा तक, मुक्तापीड ललितादित्य की दिग्विजयो की जिसने 'दुनिया की छत' पामीरो पर अपने कश्मीरी राष्ट्र के झडे गाडे थे, चन्द्र की, जिसने पजाब की सातो जलधाराओ को लाघ बलख को जीत लिया था, अपनी प्रशस्ति—

'तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका'—

दिल्ली के पास ˜ ˎरोली के रायपिथौरा के गढ मे अपने लौहस्तभ पर खुदवा दी थी। वह राष्ट्रभावना आज भी सजग है जिसने उत्तर की सीमाओ पर हूणो का प्रबल गतिरोध किया था, जिसके व्रती स्कन्दगुप्त ने राते नगी समरभूमि मे काटी थी, जिसकी भुजाओ से हूणो के टकरा जाने से धरा डोल गई थी, आवर्त बन गया था—'हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्म्या धरा कम्पिता।'

सदा से वही राष्ट्रभावना हमारे उत्तरी काँठो की रक्षा करती रही है। हिन्दूकुश के प्राचीरो पर कभी लोहे से लोहा बजा था, जब पजाब का चाणक्य पटना से राष्ट्र का सूत्र-सचालन कर रहा था, जब उसके मौर्य चद्रगुप्त ने सिकदर के जनरल, सीरिया के सम्राट सेल्यूकस को अप्रतिम कर उसकी पूर्वी सीमाओ के चार प्रात छीन लिये थे, जब पिछले दिनो मे साहियो ने काबुल के पहरुए बन उत्तर के भाले अपनी चट्टानी छातियो पर झेले थे, जब हरीसिह नलवा के विक्रात पौरुष ने हिन्दूकुश की ऊचाइयो से दहाडा था, जब जोरावर सिह ने कश्मीरी लद्दाख से तिब्बत की राह ली थी। निश्चय वह इसी भारतीय राष्ट्रीय भावना की चमक थी जो उस औरगज़ेब के ज़रिए फरगना मे चमकी जहा सम्मुख पराजय के सामने शात उस भारतीय ने दुश्मनो के बीच, उनके देखते, घोडे से काठी खीच उसे जॉनिमाज बना लिया था।

वह राष्ट्रीय जनचेतना निश्चय अजेय है, जीती नही जा सकती। जनो की चेतना है वह, उन राष्ट्रीयो की जिन्होने भारत की धरा पर अटूट गणराज्यो का निर्माण किया था—

वज्जियो-लिच्छवियो का, अरट्टो-कठो का, क्षुद्रको-मालवो का। नि सन्देह क्षुद्रको का, मालवो का, जो एक हाथ मे हसिया धारण करते थे और दूसरे मे तलवार तथा जिनकी प्राचीन स्मृति से सुरक्षित शपथ थी—कृत मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहित —दाहिने हाथ से कर्म करता हू, बाये हाथ से विजय लोढ़ता हू, दाहिने मे कर्म बसता है बाये मे विजयश्री ।

हमारा राष्ट्र नित्य है, नित्य जन्म लेता है, विकसित होता है, अक्षय है—नवो नवो भवति जायमान—नित्य नया होता है, अजर है । नित्य जीता है क्योकि हम, इसके राष्ट्राभिमानी, इसमे नित्य निरन्तर जागते है, सदा से, ऋषिकाल से [illegible]ते रहते हैं—

'राष्ट्रे जागृयाम वयम्
राष्ट्रे जागृयाम वयम्'

राष्ट्र की रक्षा मे हम सदा कटिबद्ध रहते आएहै, कटिबद्ध रहेगे । भय हमे छू नही जाएगा—भय ही राष्ट्र की रक्षा मे बाधक होता है—हम निर्भीक इसकी रक्षा करेंगे, भय से [illegible] सर्वथा विहीन होगे, सूर्य चद्रमा की भाति निर्भय । सूर्य और चन्द्रमा जैसे सदा निर्भीक रहते है, सदा अक्षय, वैसे ही नव-राष्ट्र की रक्षा मे सन्नद्ध हम भी निर्भीक रहेगे, हमारे प्रा[illegible] अपना मोह न जानेंगे, भय न जानेगे—'यथा सूर्यश्चद्रश्च [illegible] बिभीतो न रिष्यत । एवा मे प्राण मा बिमे ।।'

जब-जब हमारी उम राष्ट्रचेतना का ह्रास हुआ है तब-तब हमारे सुचेता विचारको की वाणी आग बरसा पडी है । विष्णु-पुराणकार, दिग्विजयी समुद्रगुप्त की प्रसरनीति के साथ ही

साथ राम तक के साम्राज्य को धिक्कार उठता है, कहता है—मिट गए वे जिन्होने कहा या कहना चाहा, भारत मेरा है। वे साम्राज्य मिट गए, उनके निर्माता सम्राट् मिट गए, काल उन्हे बहा ले गया, और आज इसमे तक सदेह होने लगा है कि वे कभी हुए भी थे, राम तक के अस्तित्व मे—धिक्कार है साम्राज्य को! धिक्कार है राघव के साम्राज्य को! धिक्कार है ऐश्वर्य को! यह वाणी पाचवी सदी के जनचेता राष्ट्रचेता इतिहासकार की है।

हमारी राष्ट्रभावना भारत के जनो की मानता है, विविध धर्म माननेवाले, विविध भाषाए बोलनेवाले जनो की—क्योकि हम ी पृथ्वी उन्हीको धारण करती है—

'जन बिभ्रती बहुधा विवाचस, नाना धर्माण पृथिवी यथौ-कसम्'—समूचे राष्ट्र के रूप मे उस पृथ्वी को जन स्वीकार करते है। अकेले उसका मातृत्व मानते हैं—'माता भूमि पुत्रो अह पृथिव्या'—भूमि मेरी माता है, उस माता पृथ्वी के भारत का मै पुत्र हू। 'महते जानराज्याय'!—इस महान् गणराज्य ग्त को प्रणाम!